UNIVERSAL LIBRARY
OU_186347
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

P.G.

Call No. H39C S59H   Acc. No. H3916

1ANIA UNIVERSITY LIBRARY

Accession No

ook should be returned on or before the date below

हमारे रीति-रिवाज

लेखक
प्रो० जगदीश सिंह

प्रकाशक
नैशनल पब्लिशिंग हाउस
नई सड़क, देहली

मूल पंजाबी पुस्तक "साडे रस्म-रिवाज" का हिन्दी रूपान्तर

हिन्दी रूपान्तरकार
बाल कृष्ण, एम० ए०

मूल्य : तीन रुपये आठ आने

मुद्रक
युगान्तर प्रेस
डफ़रिन पुल, दिल्ली

अपनी जीवन-संगिनी को

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ
पहला भाग—दुखदायक रस्में			
१. रिश्ते-नाते	...	...	३
२. दहेज	...	...	१०
३. बरात और मिलनी	...	...	१८
४. लेन-देन	...	...	२३
५. अतिथि-सत्कार	...	...	२८
६. जाति-भेद	...	...	३१
७. पर्दा	...	...	३८
८. जन्म-मरण	...	...	४२
९. शोक और विलाप	...	...	४६
दूसरा भाग—हमारे भाई-चारे में स्त्री का स्थान			
१. दयनीय दशा	...	...	५५
२. पति और पत्नी	...	...	६७
३. विधवा का जीवन	...	...	७५
४. नैतिक बंधन	...	...	८१
५. चरित्र की दो कसौटियां	...	...	८९
६. स्त्रियों की दिन-चर्या	...	...	९३
७. सास, ननद तथा जेठानियां		...	१००

विषय			पृष्ठ
८. विद्या	...	...	१०५
९. सामाजिक सुधार और स्त्रियों का कर्तव्य		...	११४

तीसरा भाग—घरेलू जीवन

१. बच्चे	...	...	१२३
२. सफ़ाई	...	...	१३४
३. बड़ों का आदर	...	...	१४०
४. समय की पाबन्दी	...	...	१४६
५. खाने-पीने का ढंग	...	..	१५०
६. घरों का परस्पर जीवन	...	...	१६१
७. आदर्श घर	...	...	१६६

परिशिष्ट

एक सरल और सुगम विवाह का प्रयोग	...	१७५

हम लोग दुखी हैं, हमारा देश दुखी है, हमारा समाज दुखी है, हमारी स्त्रियां दुखी हैं, हमारे बच्चे दुखी हैं। हमारा गृहस्थ-जीवन नरक के समान है, दुखों से भरपूर है। हमारे सगे-सम्बन्धी हमारे शत्रु हैं, हमारे रीति-रिवाज हमारे लिये क्लेशों और संकटों के मूल हैं। हम अपने आदर्शों से गिर चुके हैं, हम दिन-दिन पतन के गढ़े में गिरते जा रहे हैं, हम अपने आप को भूल चुके हैं।

हमारे दुखों का क्या कारण है? हमें क्यों ऐसा लगता है जैसे हमारा घर हमें काट खाएगा?

हमारा गृहस्थ-जीवन किस प्रकार सुखी हो सकता है? उसमें किन-किन सुधारों की आवश्यकता है? हम किस तरह सुख के दिन काट सकते हैं? हमारे सामाजिक और गृहस्थ-जीवन में पुरुष तथा स्त्री का क्या स्थान होना चाहिये? बच्चों के साथ हमें कैसा बर्ताव करना चाहिये?

हमारे भाईचारे-सम्बन्धी रिवाज किस तरह हमारे दुखों का कारण बन रहे हैं? इनका क्या वास्तविक अर्थ, रूप और मन्तव्य था, और हम क्या कर रहे हैं? आज के हमारे रीति-रिवाजों एवं सामाजिक प्रथाओं में क्या-क्या दोष हैं? हम इनका सुधार किस तरह कर सकते हैं?

संसार के अन्य देश और राष्ट्र किधर जा रहे हैं? हम उनकी क्या-क्या रीसें कर रहे हैं? ये रीसें हमें किधर ले जा रही हैं; तथा वे बातें उन्हें किधर ले गई हैं?

?

छोटी अवस्था में मैंने अपने भाईचारे को सहज-स्वभाव से देखा। इस सम्बन्ध में मेरे कुछ निश्चित विचार बने या नहीं, मैं कह नहीं सकता। स्कूल के अध्ययन-काल में किसी समझदार अध्यापक ने हमारे सामाजिक रीति-रिवाजों के सम्बन्ध में कभी बातचीत की हो, याद नहीं पड़ता। कालिज के अध्ययन-काल में कोई-कोई प्रोफ़ेसर पढ़ाते-पढ़ाते सामाजिक रीति-रिवाजों के सम्बन्ध में कभी २ कुछ कह डालते थे। कुछ बातें दिल में बैठ गईं, कुछ विचारों की जड़ें मन में जमने लगीं। धीरे-धीरे विचार अंकुरित होने लगे, मस्तिष्क उन पर गहन मनन करने लगा; फिर उन विचारों ने लेख का रूप धारण कर लिया। समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में लेख लिखे। उन्हें पसन्द किया गया तो शौक़ बढ़ गया। तब इस विषय पर लिखने-लिखाने का सिलसिला बढ़ने लगा।

विचारों और लिखने-लिखाने ने जीवन में कुछ आदर्श बना दिये। मैंने इन अनावश्यक एवं अनुचित बंधनों से छुटकारा पाने का निश्चय कर लिया, बुरे रीति-रिवाजों को त्यागने की भावना ने अभिलाषा का रूप धारण कर लिया। एक सुगम, सरल एवं सादे विवाह का प्रयोग किया। बहनों ने इस प्रयोग में मेरा साथ दिया;

जीवन-संगिनी दलेर निकली। कुछ आदर्शों को दोनों ही साथियों ने अपना लिया।

धीरे-धीरे पता चला कि आज प्रत्येक हृदय की पीड़ा यही है। हर व्यक्ति सामाजिक कुरीतियों के कोल्हू में पीड़ा जा रहा है।

कुछ दिनों के बाद मैंने बिखरे हुए लेखों को पुस्तक का रूप दे दिया। मूल पंजाबी पुस्तक "साडे रस्म-रिवाज" को बहुत पसन्द किया गया। उत्साहित होकर मैंने अब इस पुस्तक के हिन्दी रूपांतर के प्रकाशन का आयोजन किया है।

❀ ❀ ❀ ❀

रीति-रिवाजों के बन्धन बड़े विकट, बड़े कठोर हैं। ये बन्धन बड़े भारी परिश्रम से खुलेंगे। सियाने-समझदार लोगों में भी बड़ी निरर्थक एवं ऊट-पटांग प्रथाएं प्रचलित हैं। जो घराने कुछ आगे बढ़े हुए हैं उनमें भी बड़े-बूढ़ों को सन्तुष्ट और प्रसन्न करने के लिये बहुत सी व्यर्थ की रीतियां पूरी की जाती हैं।

रीति-रिवाज उसी प्रकार चल रहे हैं—चाहे अपने पुराने रूप में, चाहे रूप बदल कर। परन्तु सैंकड़ों-हज़ारों वर्ष पुराने रिवाज, जिनका वास्तविक अर्थ एवं मन्तव्य का हमें ज्ञान ही नहीं है, बराबर हम पर शासन कर रहे हैं। "जो हमारे बड़े-बूढ़े करते आये हैं" वही कुछ हम करते चले जा रहे हैं।

"क्यों ?"

'क्यों' पूछने की हमें इजाज़त ही नहीं। आक्षेप करना 'निर्लज्जता' है, और विरोध करने का अर्थ है बड़ों का निरादर करना, उनका सामना करना, उनका अपमान करना !

पढ़े-लिखे लोग तथा अनपढ़ सब इस रोग में फँसे हुए हैं। पढ़ी-लिखी लड़कियाँ इस ओर ध्यान नहीं देतीं, पढ़े-लिखे लड़के अपने स्वार्थ और अपने लाभ की ही बात सोचते हैं।

मां-बाप बच्चों को आज्ञा-पालन और बड़ों की रीत पर चलने की ही शिक्षा देते हैं। उन्हें नई लीकों पर चलने की इजाज़त नहीं है; प्रेरणा और उत्साह का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

घरों का नक्शा बदलने की बड़ी आवश्यकता है। हमारे घरेलू जीवन में पारस्परिकता, स्नेह, मिठास तथा स्वार्थ-त्याग के स्थान पर विवशता, कठोरता, स्वार्थपरता, वहम, दिखावे तथा घृणा के भूत राज कर रहे हैं।

लोग रूढ़ियों की दासता में जकड़े पड़े हैं। बहुत से लोगों को तो इन ज़ंजीरों का भार अनुभव ही नहीं होता। जो अनुभव करते हैं वे इन्हें "कर्मों का फल" मानकर सहन कर रहे हैं। यदि कोई एकाध व्यक्ति, कोई विरला ही, साहस करके इन ज़ंजीरों को उतार फैंकने का प्रयत्न करता है तो उसके संगी-साथी उसे समझाते-बुझाते हैं, पुरानी रूढ़ियों में ही सन्तुष्ट और प्रसन्न रहने के लिये उसे प्रेरित करते हैं; और यदि वह न माने तो धक्का देकर उसे परे फैंक देते हैं।

यह बात अत्यन्त आवश्यक है कि नवयुवक इस ओर अधिक ध्यान दें। उन्हें चाहिये कि वे सब सामाजिक रीति-रिवाजों और रूढ़ियोंका अध्ययन करें; इनकी जाँच-पड़ताल करें, इन पर गहन

विचार करें, और फिर इन्हें मलियामेट करने के लिये विद्रोह का झंडा खड़ा कर दें। एक भयंकर तूफ़ान से ही समाज का जीर्ण-शीर्ण ढाँचा गिरकर फिर उसका नया भव्य भवन खड़ा हो सकेगा।

सियाने-समझदार दम्पति ही मिल-जुल कर कुरीतियों पर आक्रमण कर सकते हैं। कोई भी साथी अकेला रीतियों के बन्धनों को नहीं तोड़ सकता। रीतियों का सम्बन्ध घरेलू जीवन से सामूहिक रूप में होता है। सफलता तभी मिलेगी जब दोनों साथी परस्पर मिलकर प्रयत्न करेंगे।

स्त्रियाँ रीति-रिवाजों को सम्भाल कर रखने के लिये ज़िम्मेदार हैं। इन रीति-रिवाजों से छुटकारा पाने के लिये स्त्री-जाति को बहुत प्रयत्न एवं उद्यम करना पड़ेगा। विशेष करके प्रत्येक पढ़ी-लिखी स्त्री का यह परम कर्तव्य और आदर्श होना चाहिये कि वह रीति-रिवाजों के बन्धनों से छुटकारा पाकर एक सुन्दर, मधुर, स्नेहपूर्ण, आनन्ददायक गृहस्थी की नींव रखे।

विद्रोह का झंडा खड़ा किये बिना हम इस भयानक दासता से मुक्त नहीं हो सकते। हर घर में, हर गाँव में, हर शहर में, हर ज़िले और हर प्रान्त में—अर्थात् देश के कोने-कोने में—एक महा-विकराल आँधी-तूफ़ान की भांति एक प्रबल, महाशक्तिशाली आन्दोलन चलाकर इन बुरे रीति-रिवाजों को जड़ से उखाड़ फेंकने की आज सर्वोपरि आवश्यकता है।

—जगदीश सिंह

पहला भाग

दुखदायक रस्में

१. रिश्ते-नाते
२. दहेज
३. बरात और मिलनी
४. लेन-देन
५. अतिथि-सत्कार
६. जाति-भेद
७. पर्दा
८. जन्म-मरण
९. शोक और विलाप

विवाह की खुशी—नये कपड़े, भड़कीले सूट, नये से नये आभूषण, पलंग-पीढ़े, बर्तन, कपड़े, बरी, दहेज, भाजियाँ, मिठाइयाँ, हलुवा, पूरी, साग-भाजियाँ, लड्डू, मट्ठियां, नारियल, छुहारे, बाजे, गाजे, आतिशबाज़ी, चहल-पहल, सत्कार, बधाइयां, मान-सम्मान .. सब कुछ .. !

फिर वही तुनतुनी और वही राग ! वही ढर्रा !! गृहस्थ के जञ्जाल, घर के झमेले, देवरानियों-जेठानियों की लड़ाइयाँ, नन्द-भौजाइयों के वाग्युद्ध, सास-बहुओं की गालियां, कुटुम्बियों की बोलियां, पिता-पुत्र का मन-मुटाव, भाई-भाइयों के झगड़े, खाने-पीने का समय, बच्चों का रोना-पीटना, कपड़े-लत्ते का प्रश्न, घर की चिन्ताएँ; न खाने का सुख, न घूमने-फिरने का सुख, न सोने का समय न बैठने का अवकाश; सगे-सम्बन्धियों व गली-मुहल्ले में भाजी, शगन. पान-सुपारी, फल-मिठाई; बच्चों के जन्म पर बधाइयां, विवाह की बधाइयां, बीमारों की पूछताछ, मरने पर विलाप, पल्ले, रोना-पीटना, बुलाना, चलाना..... !

यह है हमारा गृहस्थ, झूठी खुशियां, दिखावे का आदर-सत्कार, कृत्रिम बधाइयां, झूठमूठ की सहानुभूति, सगे-सम्बन्धियों के बैर, प्रियजनों के अन्याय, अपनों का अत्याचार— यह है हमारा भाई-चारा !!

रिश्ते-नाते

माता-पिता को लड़की के उत्पन्न होते ही उसके दहेज की चिन्ता प्रारम्भ हो जाती है, और लड़के के पैदा होते ही वे बड़े चाव से उस दिन की प्रतीक्षा करने लगते हैं जब उनके घर में बहू आवेगी। हिन्दुस्तानियों के जन्म-दिन के उपरान्त दूसरा महत्व-पूर्ण दिन विवाह का दिन होता है। जन्म से लेकर विवाह तक के समय को हम कुछ भी महत्व नहीं देते; हमारे विचारानुसार बच्चे का जन्म ही विवाह के लिये होता है, इस लिये बच्चे के जन्म-दिन से ही उसके विवाह के दिन की प्रतीक्षा और विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं। कई बार तो ऐसा भी होता है कि दो सहेलियाँ आपस में यह प्रण कर लेती हैं कि यदि एक के घर लड़की होगी और दूसरी के घर लड़का तो वे दोनों का विवाह कर देंगी अर्थात् बच्चे के जन्म से पहले ही उसका सम्बन्ध निश्चित कर दिया जाता है, परन्तु ऐसी बात कभी-कभी ही होती है।

हमारे यहाँ रिश्ते दो प्रकार के होते हैं :—

१. अटा-सटा　　२. कन्यादान

प्रथम विवाह की रीति इस प्रकार है कि एक घर के लोग अपनी कन्या का विवाह दूसरे घर के पुत्र के साथ कर देते हैं तथा दूसरे घर की कन्या का विवाह अपने पुत्र से करते हैं। यह

रीति तभी सम्भव है जबकि दोनों घरों में एक-एक पुत्र तथा एक-एक कन्या हो। इस रीति को अटा-सटा कहते हैं। यह रीति अधिकतर सीमा-प्रांत, पुठ्ठहार प्रांत तथा अन्य थोड़े ही प्रांतों में थी, और अधिकतर ग़रीब लोगों में ही प्रचलित है। दूसरी रीति कन्यादान की है जो अमीर, ग़रीब दोनों ही वर्गों में प्रचलित है। इसके अनुसार कन्या का 'दान' किया जाता है। इस रीति में अटा-सटा रीति की भांति बदले में कन्या लेने की प्रथा नहीं है। अटा-सटा की रीति तो एक व्यापार स्वरूप है—एक कन्या दी और एक ले ली। इस रीति के सम्बन्ध में अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस प्रकार के रिश्तों को हम लोग अच्छी दृष्टि से नहीं देखते।

हमारे रिश्ते अधिकतर किसी के द्वारा ही होते हैं, कोई सज्जन मित्र अथवा सगा-सम्बन्धी बीच में पड़कर रिश्ता कराता है। लड़की वाले, लड़के वाले के किसी मित्र अथवा सगे-सम्बन्धी के पास पहुँचते हैं और उस पर ज़ोर देते हैं कि वह रिश्ता करा दे। लड़के वाले विवश हो अजीब दुविधा में फँस जाते हैं। यदि अस्वीकार करते हैं तो रिश्ता लाने वाले के साथ सारी आयु के लिये वैमनस्य हो जाता है। इस लिये जब भी कोई ऐसा मित्र अथवा सगा-सम्बन्धी बीच में पड़ जाता है जिसके कहने को अस्वीकार करना कठिन हो तो विवश होकर लड़के वालों को 'हां' ही करनी पड़ती है।

हम रिश्ते लड़की और लड़के के घर वालों को देखकर करते

हैं। इस बात को खोज की जाती है कि लड़के या लड़की के माता-पिता को जायदाद कितनी है, कोई घर-बार है या नहीं, माता-पिता के स्वभाव, व्यवहार आदि का पता लगाया जाता है, भाई बहनों के विषय में पूछ-ताछ की जाती है। लड़के और लड़की के विषय में तो केवल इतना ही पता करते हैं कि वह अन्धे काने तो नहीं हैं! इससे अधिक कुछ पूछ-ताछ करने की आवश्यकता नहीं समझी जाती।

हम लड़के-लड़कियों का शीघ्र ही कहीं सम्बन्ध निश्चित करने की कोशिश करते हैं। लड़का भले ही अभी पढ़ता हो, या कोई काम-धन्धा सीखता हो, अथवा किसी नौकरी की खोज में हो, परन्तु लड़की वाले शीघ्रता ही करने की सोचते हैं जिससे कहीं ऐसा न हो कि लड़का हाथ से निकल जाए। लड़की का तो सारा प्रश्न आयु का ही होता है, जहाँ उसने आयु के चौदह-पन्द्रह साल पूरे किये कि माता-पिता को उसका विवाह शीघ्र कर देने की चिन्ता सताने लगती है। कहीं ऐसा न हो जाए कि लड़की की आयु बड़ी हो जाय और उसे कोई स्वीकार न करे। इसी डर से जब कन्या १२ वर्ष पूरे कर लेती है तो दो तीन वर्षों के अन्दर ही अन्दर उसका कहीं न कहीं विवाह कर दिया जाता है। अभी भी कई प्रदेशों में इससे भी छोटी आयु वाले लड़के और लड़कियों का विवाह कर देने की प्रथा है।

पर क्या यह सब कुछ ठीक है? क्या हम पूर्ण सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं, और इन रीतियों में कोई परिवर्तन करने की

आवश्यकता नहीं ? यदि इसका अनुमान लगाना हो तो समाचार-पत्र पढ़कर देखिए; कहीं लड़का आत्महत्या कर लेता है क्योंकि उसके माता-पिता ने उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध कर दिया था। कहीं लड़की अपने आप को आग लगाकर जल मरती है क्योंकि अपने पति के साथ या सास के साथ उसका निभाव नहीं होता। कहीं लड़का अपनी पत्नी को घर में नहीं रखता और पत्नी अपने खर्च के लिये उसके ऊपर दावा करती फिरती है। कहीं लड़के की माता-पिता के साथ नहीं बनती और वह पत्नी को साथ लेकर घर से निकल जाता है। इन बातों के और भी कई कारण हो सकते हैं परन्तु सबसे बड़ा कारण हमारे रिश्ते करने का ढंग है। हम लड़के-लड़कियों का विवाह नहीं करते, वरन् समधियों का विवाह करते हैं। हम केवल यही देखते हैं कि लड़के या लड़की के माता-पिता सज्जन व्यक्ति हैं या नहीं, या उनकी जायदाद कितनी है। हमने कभी यह बात नहीं सोची कि लड़के-लड़की की परस्पर निभेगी या नहीं। हम केवल यही सोचते हैं कि समधियों की आपस में निभेगी या नहीं। हमें लड़के-लड़की के दिल का कुछ पता नहीं होता और न हमने कभी पता लगाने का प्रयत्न ही किया है। न ही हम उनके गुण-अवगुण देखते हैं। हमारा यही विचार है कि लड़के-लड़कियां मां-बाप के पास ही जाती हैं। माता-पिता अपने बच्चों का विवाह अपने विचारानुसार करते हैं, उन्हें इस बात का कुछ पता नहीं होता कि उनके बच्चों के विचार किस ओर जा रहे हैं। इसका अन्त प्रतिदिन की

लड़ाइयां, झगड़े, दावे तथा आत्महत्या के रूप में सामने आता है।

अभी तक माता-पिता को अपने बच्चों के विवाह करने के पूर्ण अधिकार मिले हुए हैं, परन्तु अब समय बदल रहा है। हमें अपना कर्तव्य पहचानना चाहिये, कहीं ऐसा न हो कि हमारे लड़के-लड़कियां हमारे वश से बिल्कुल बाहर हो जावें। हमें अपने लड़के-लड़कियों का भला सोचना चाहिए, उनका रिश्ता उनकी सम्मति तथा सहमति के बिना नहीं करना चाहिये। हम बहुत बार धन देख कर फिसल जाते हैं, या तथाकथित आदर-मान में फँस जाते हैं, पर जिन दोनों को अपना सारा आगामी जीवन व्यतीत करना है उनको पूछते तक नहीं। यही कारण है कि आजकल के नवयुवक 'बिगड़े' हुए हैं और कहना नहीं मानते। अभी भी समय है कि हम अपने आपको बदल लें, अन्यथा आने वाले समय में लड़कियां भी हमारे हाथों से निकल जाएंगी। समय के वेग को रोक सकने में हम समर्थ नहीं। यदि हम अपने लड़के-लड़कियों को "तुम्हारा क्या अधिकार है बोलने का ? तुम्हें अभी इन सभी बातों की समझ नहीं।" ऐसा कह कर चुप करने का प्रयत्न करेंगे, तो यह हमारी ग़लती होगी। यदि हम ऐसा समझते हैं कि उन्हें अभी इन बातों की समझ नहीं, तो यह अच्छा है कि अभी उनका रिश्ता ही न करें।

यह हमारी बड़ी भारी भूल है कि हम लड़के का रिश्ता उसी समय कर देते हैं जबकि वह अभी बेरोज़गार होता है, या अभी उसकी शिक्षा भी समाप्त नहीं होती। कोई नहीं कह सकता कि

लड़का बड़ा होकर क्या बनेगा। एक ओर हो सकता है कि वह खाली डंडे ही बजाता फिरे, तथा दूसरी ओर यह भी संभव है कि वह किसी बड़ी पदवी पर पहुँच जावे। परन्तु रिश्ता होने के पश्चात् लड़के के प्रति दोनों ओर ही शंका बनी रहती है; यदि कोई रोज़गार न मिले, तो वह स्वयं भी दुखित रहता है और वह लड़की भी जो उसकी पत्नी है। यदि उस लड़के को कोई बड़ी पदवी मिल जावे तो क्या पता है कि वह अपनी मंगेतर से विवाह ही न करे और शायद अपनी पदवी के अनुसार किसी बड़े घर की लड़की से विवाह करना चाहे। इसलिये अच्छा यही है कि जब तक लड़का स्वयं कमाई न करने लगे तब तक उसका रिश्ता कहीं न किया जावे।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है हम बहुत सारे रिश्ते केवल किसी बीच में पड़े व्यक्ति का मान रखने के लिये ही करते हैं, चाहे हम कई कारणों से उसे स्वीकार न करना चाहें। प्रयत्न तो हम यह करते हैं कि जो हितैषी मित्र या सम्बन्धी रिश्ता कराने के लिये बीच में पड़ा है उसे नाराज़ न करें, परन्तु ऐसा करने से हम अपने पुत्र या पुत्री का सारा जीवन तबाह कर देते हैं। उसके लिये हम यह उक्ति कह देते हैं कि "घर आई लक्ष्मी लौटाई नहीं जाती"। साथ ही बड़े २ गुरु, अवतार और पैग़म्बरों को इस उक्ति की पुष्टि के उदाहरण स्वरूप रख देते हैं। पुराने समय की रीतियां आजकल से बिल्कुल भिन्न थीं। हमें हर बात समय के अनुसार ही सोचनी चाहिये। हमारा दिल भले ही इस बात की

गवाही देता हो कि उक्त स्थान से आए रिश्ते को हमें स्वीकार नहीं करना चाहिये, परन्तु केवल किसी बीच में पड़े व्यक्ति की नाराज़गी से बचने के लिये या "घर आई लक्ष्मी" के विचार से यदि हम उस रिश्ते को स्वीकार करते हैं तो यह हमारी कितनी बड़ी भूल है ! यदि हम अपना और अपनी संतान का सुख चाहते हैं तो हमें ये सारी निरर्थक बातें त्यागनी पड़ेंगी।

हम एक और दलील भी देते हैं कि संयोग तो ईश्वर ही के द्वारा होते हैं। यदि किसी को अच्छी पत्नी या अच्छी पुत्र-वधु न मिले तो हम कहते हैं कि ईश्वर के ऊपर तो किसी का ज़ोर चलता नहीं, संयोग तो जहां ईश्वर ने करना था वहाँ होना था। यह कितनी निरर्थक दलील है। इस प्रकार तो हम यह भी कह सकते हैं कि आजकल के लड़के-लड़कियों को बिगाड़ा भी ईश्वर ने ही है। इसके लिये कोई दुख मनाने की आवश्यकता नहीं। हमारी ही भूलों तथा अन्यायों ने लड़के-लड़कियों को बिगाड़ा है और जब तक हम अपने रिश्ते करने की रीति और ढंग न बदलेंगे तब तक हमारा घरेलू जीवन शांत और सुखमय नहीं हो सकता। यह नित्य का दुःख और क्लेप कैसे दूर हो सकते हैं जबकि हम रिश्ते करते समय नींव ही इन्हीं की रखते हैं।

दहेज

हमारे रिश्ते-नाते की प्रथाओं में आजकल जो सब से अधिक दुखदायी है वह है दहेज की प्रथा। जब से कन्या का जन्म होता है तभी से उसके माता-पिता को उसके दान-दहेज की चिंता लग जाती है। माता उसके दहेज के लिये धीरे २ कपड़े इत्यादि तैयार करती रहती है। जिस बेचारी माँ की तीन-चार लड़कियां हों, उसको तो न दिन को सुख न रात को चैन। हर समय लड़कियों की ही चिन्ता लगी रहती है, यदि कहीं से अच्छे कपड़े हाथ लग गये तो उन्हें सम्भाल कर रख दिया, यदि कहीं अच्छे नए नमूने के बर्तन देखे तो वह खरीद कर रख छोड़े। आभूषण भी लड़की के लिए नए २ डिज़ाइनों के साथ ही साथ तैयार करती रहती है। इस तरह कन्या के जन्म से लेकर उसके विवाह तक उसका दहेज धीरे २ तैयार होता रहता है।

इस प्रथा का क्या कारण था? यह क्यों बनाई गई थी? हमारे बहुत सारे रीति रिवाजों का सम्बन्ध हमारे पैतृक सम्पत्ति के कानून से है। दहेज की रीति भी इसी से सम्बन्धित जान पड़ती है, क्योंकि कन्याओं को वैधानिक रूप से माता-पिता की सम्पत्ति के ऊपर कोई अधिकार नहीं, उनको इसके बदले दहेज दिया जाता है। कन्याओं और बहनों को सभी अवसरों पर देने की

प्रथा इसी कारण है कि उन्हें सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं दिया जाता।

परन्तु हमने इस दहेज-प्रथा को क्या बना रक्खा है ? जिन घरों को आज-कल की हवा नहीं लगी है वहाँ यह होता है कि सारे का सारा दहेज लड़की की ससुराल वाले हथिया लेते हैं और वही कपड़े, लत्ते, बर्तन, भांडे आदि उसकी नन्दों के विवाह में दहेज के रूप में दे दिये जाते हैं। बनाता कोई है और उसका प्रयोग कोई करता है। यदि लड़के की नौकरी एवं काम-काज घर से बाहर किसी दूसरे नगर में लग जाता है अथवा लड़के का कुछ रौब होता है तो उसकी माँ बहू के दहेज में से थोड़ी बहुत वस्तुएँ लड़के को दे देती हैं; दूसरे शब्दों में बहू को अपने दहेज में से थोड़ी बहुत वस्तुएँ मिलने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है।

जिन घरों को आज-कल की हवा लग चुकी है वहाँ यह हाल है कि लड़का कहता है कि मैं वहाँ विवाह कराऊँगा जहाँ मुझे खूब माल मिलेगा। कार, रेडियो, सोफा-सैट, डिनर-सैट, नक़द रुपया, तथा अन्य कई वस्तुओं की वे आशा करते हैं। लड़कों को तो छोड़ दीजिए, उनके माँ-बाप भी ऐसी ही आशाएँ बांधे बैठे रहते हैं।

लड़की का दहेज सास, ससुर के काम आता है अथवा पति के। हमने दहेज को एक लाटरी समझ छोड़ा है, अर्थात् पुत्र की पढ़ाई आदि पर चाहे कितना ही खर्च करते चले जाओ जब उसका विवाह होगा तो सारी अगली-पिछली कसरें पूरी करली जाएँगी।

हैदराबाद (सिन्ध) के हिन्दुओं में एक साहित्यिक आमिल थे जो बड़ी ऊँची जाति के समझे जाते हैं। उनकी विद्या-बुद्धि की बड़ी ख्याति है, परन्तु उनके अन्दर दहेज की प्रथा का इतने बुरे ढंग से पालन किया जाता है कि लड़कियों के लिये वर मिलने कठिन हो गये हैं। उनके नवयुवक अच्छी ऊँची शिक्षा प्राप्त करते हैं, विलायत तक भी पढ़ते हैं, परन्तु जब विवाह का समय आता है तो जो व्यक्ति सबसे अधिक रुपया देता है उसकी लड़की के साथ उस लड़के का विवाह हो जाता है। इसका परिणाम यह है कि तीस-तीस वर्ष की लड़कियाँ कँवारी बैठी रहती हैं, माँ-बाप के पास न पन्द्रह-बीस हजार रुपया देने के लिए होता है न लड़की ब्याही जाती है। कुछ वर्ष हुए वहाँ लड़कियों ने कुछ हिम्मत की थी और यह घोषणा करदी थी कि हम उन लड़कों के साथ विवाह नहीं करेंगी जो दहेज माँगेंगे। यदि आज-कल जैसी हालत कुछ और दिन रही तो वह समय दूर नहीं जब कि हमारे देश के कोने-कोने में यही स्थिति हो जावेगी।

जिस प्रथा का वास्तविक ध्येय हम छोड़ बैठे हैं उस पर चलना बड़ी भारी भूल है। दहेज का अर्थ था माँ-बाप की सम्पत्ति में लड़की का हिस्सा, परन्तु जब यह लड़की के पास रहता ही नहीं तो फिर इसे देने से लाभ ही क्या है। यह तो उसके सास-ससुर को तथा पति को परमात्मा आकाश फाड़ कर गप्फे फैंक देता है जिनके लिए वे चिरकाल से तरस रहे होते हैं। फिर जो दहेज माँ-बाप की जायदाद का ही भाग है, तो जिन लोगों के पास कोई

जायदाद नहीं वे दहेज क्यों दें ? पर नहीं, दहेज देना आवश्यक है। "लड़कियों को खाली नहीं भेजना चाहिये"। चाहे घर में खाने को कुछ न हो परन्तु दहेज देना आवश्यक है अन्यथा नाक कट जायेगी; लोग क्या कहेंगे, "लड़की को कुछ भी नहीं दिया" बस ये विचार हमें मार रहे हैं और हमारा घर पट हो रहा है।

जो लड़के धन के लोभ में किसी जगह विवाह करते हैं और जिनका किसी घर की लड़की से विवाह करने में वास्तविक ध्येय ही यह होता है कि वहाँ से खूब धन मिलेगा क्या उनका विवाहित जीवन कभी सुखी हो सकता है ? जिस पति और पत्नी का मेल ही पैसे ने कराया है वहाँ भला प्रेम कहाँ निवास कर सकता है ? कितने दुख की बात है कि हमने विवाह को भी पैसे का ही एक खेल बना रक्खा है। हमारा गृहस्थ जीवन इसी लिए सुखी नहीं हो सकता चूंकि हमने इसकी नीव अनुचित नियमों पर रक्खी हुई है।

दहेज के कपड़े भी लड़कियाँ स्वयं तैयार करती हैं। उन्हें स्वयं ही चादरे, दुपट्टे, गिलाफ आदि सीने व तैयार करने पड़ते हैं। मातायें लड़कियों से बलपूर्वक उनके दहेज के कपड़े तैयार कराती हैं, यदि वे न करें तो धमका कर एवं मार-कूट कर भी उनसे यह काम कराया जाता है। इसी प्रकार तैयार हुए इन कपड़ों में से कुछ कपड़े उनके हिस्से के अनुसार उनके दहेज में दे दिये जाते हैं, शेष कपड़े माँ अपने घर के लिये तथा अन्य लड़कियों के लिये रख लेती है। लड़कियों का ध्यान सदा इस दहेज की तैयारी

में ही लगा रहता है, खाना पकाने तथा घर के अन्य कार्यों में वह समय नहीं दे पातीं। कुछ समय पहले तो बहुत बारीक डिज़ाइनों का रिवाज था जिन्हें निकालने में लड़कियों की आँखें भी कमज़ोर हो जाती थीं। अब भी कढ़ाई का काम बहुत करना पड़ता है चाहे वह कुछ और प्रकार का हो गया है, परन्तु यह बात स्पष्ट है कि यह कार्य कला-कौशल के रूप में नहीं किया जाता वरन् दहेज के कपड़े तैयार करने के लिये किया जाता है। इस प्रकार हमारी लड़कियों की आँखें बड़ी कमज़ोर हो जाती हैं और साथ ही उनका स्वास्थ्य भी खराब हो जाता है जिसका प्रभाव उनके सारे भावी जीवन पर बहुत बुरा पड़ता है।

यदि हम इन निकम्मी और निरर्थक प्रथाओं को छोड़ दें जिनके कारण माता पिता को सदा लड़की के दहेज के लिए रुपया जोड़ने की चिंता करनी पड़ती है तो वे क्यों न अपनी लड़कियों को उच्च शिक्षा देंगे। जो समय और पैसा लड़कियों के दहेज के लिये व्यय किया जाता है, यदि वही समय और पैसा उन्हें शिक्षित करने में लगाया जाए तो क्यों न हमारी लड़कियाँ सुखी होंवे। जितना ध्यान लड़की के दहेज में दिया जाता है यदि वह उनको शिष्टाचार सिखाने में दिया जावे तो हमारे घरेलू जीवन का चित्र ही बिलकुल बदल जावे, पति और पत्नी सुखी जीवन व्यतीत करें और भारत की आने वाली सन्तानें योग्य बन जावें। हमारे देश की मुक्ति हमारे घरेलू जीवन पर निर्भर है और हमारा घरेलू

जीवन विवाह-सम्बन्धी बुरे रीति-रिवाजों के छोड़ने पर ही सुखी हो सकता है।

एक और बात भी विचार करने योग्य है कि क्या माता-पिता अपनी लड़कियों को दहेज बड़ी प्रसन्नता के साथ देते हैं? पहली बात तो यह कि यह एक प्रथा बन गई है इसलिए चाहे दुखी हो कर दें या प्रसन्न होकर दें, दहेज देना अवश्य पड़ता है। बिना इसके लड़कियाँ ब्याही ही नहीं जातीं। दहेज की मात्रा अपनी मान-मर्यादा के अनुसार होती है। सगे-सम्बन्धियों तथा भाई-चारे में जितना जिसका मान-सम्मान हो उसके अनुसार दहेज दिया जाता है, चाहे इतना दहेज देने की हिम्मत और सामर्थ्य हो या न हो। अपनी पोजीशन से कम देने में "नाक कट जाती है"। कई बार इसी कारण से ऋण का बोझ भी उठा लिया जाता है। इसके अतिरिक्त और भी कई बातें होती हैं। यदि किसी लड़की में कोई कमी एवं दोष हो और कोई लड़का दृष्टि में हो तो वह लड़का जो कुछ माँगे हाँ करके उसके साथ लड़की का विवाह करने की जल्दी की जाती है, ताकि कहीं उस कमी या दोष का पता न लग जाये अथवा कोई योग्य वर न मिलता हो तो फिर जैसा भी कोई मिल जावे और वह दान-दहेज अच्छा माँगे तो जैसे भी हो वह सम्बन्ध झटपट निश्चित कर लेने का प्रयत्न किया जाता है कि कहीं यह भी हाथ से न निकल जाये और फिर कहीं कोई अन्य योग्य वर न मिले। अथवा कई बार यह भी देखा जाता है कि लड़की बड़ी होती जा रही है और यदि कोई लड़का नज़र

में हो तो कोशिश की जाती है कि जैसे भी हो रिश्ता कर दिया जावे, अन्यथा शायद कोई और लड़का बहुत दिनों तक न मिले; और यदि लड़की बहुत बड़ी हो जाये तो हो सकता है कि फिर कोई भी लड़का न मिले। इसी प्रकार की कई बातें होती हैं जिनसे विवश होकर हम अपनी शक्ति से अधिक दहेज देते हैं तथा लड़के की और भी माँगें स्वीकार करते हैं। बड़े लोगों की तो पूछिये ही मत; वे तो अपने बड़े होने की शान में ही हजारों रुपये दहेज में लगा छोड़ते हैं। उनकी तो यही अभिलाषा होती है कि लोग वाह-वाह करते हुए उठें, चाहे इतना रुपया व्यय करने का सामर्थ्य उनके अंदर न हो। वे तो लोगों की वाह-वाह पर मरते हैं। यह हाल है हमारे रिश्ते-नाते-सम्बंधी रीति-रिवाजों का। वे बने थे किस ध्येय से और हम उन पर चल रहे हैं किन कारणों से। दहेज था तो माता पिता की जायदाद में लड़की का हिस्सा, परन्तु हमने इसको क्या से क्या बना दिया है। यह ठीक है कि हमारे विरासत के कानून बदलने के लिए बड़े प्रचार और आंदोलन की आवश्यकता है परन्तु यह स्पष्ट है कि हम इन कुरीतियों को स्वयं छोड़ सकते हैं और कानून हमें इस बात से नहीं रोकता। जिन लोगों में हिम्मत है वे इन व्यर्थ के ढकोसलों और कुरीतियों को छोड़ दें। लोग देखा-देखी अपने आप इनके पीछे चलने लगेंगे। सुधार सदा इसी प्रकार होते आये हैं। सरकारी कानून कभी सुधार नहीं कर सकते। वे तो केवल लोगों की सहायता करने के लिये होते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या लड़कियों को दहेज भी न दिया जाय ? कई लोग इस तरह करते हैं कि लड़की के नाम रुपया बैंक में जमा करा देते हैं और पासबुक को उसके हाथ में दे देते हैं, परन्तु यह भी एक कठिन-सी बात है। दहेज में दी गई चीज़ें काफी कुछ दिखाई देती हैं परन्तु यदि उनके स्थान पर उतना रुपया दिया जाय तो बहुत थोड़ा लगता है। इस तरह माता-पिता को नक़द रुपया बहुत देना पड़ता है। लड़के वाले भी इस बात पर बहुत क्रोध करते हैं कि रुपया लड़की के नाम क्यों जमा कराया गया है।

इन रीति-रिवाजों का सुधार इस प्रकार नहीं होगा; इलाज यही है कि इन रिवाजों को बिल्कुल ही छोड़ दिया जाए और दहेज देना बिल्कुल ही बन्द कर दिया जाए। माता-पिता की जायदाद का हिस्सा एक समान लड़कों और लड़कियों को दे दिया जाय। विवाह की प्रथा को हम लोग जितना सीधा-सादा बनाएंगे उतने ही सुखी रहेंगे।

बरात और मिलनी

हमारे बहुत सारे रीति-रिवाज ऐसे हैं जिनका असली अभिप्राय किसी को पता ही नहीं, और हम आँखें बंद करके लकीर के फकीर बने जा रहे हैं। बरात की रीति भी उनमें से एक है। कई लोग कहते हैं कि पहले समय में मार्ग संकटपूर्ण होते थे और साधारणतया लोग पैदल ही यात्रा करते थे, और जब विवाह होना होता था तो वर के बहुत सारे सगे-सम्बंधी उसका साथ देते थे जिससे मार्ग में उसे कोई कठिनाई न आ पड़े। कई कहते हैं कि बराती एक प्रकार के गवाह समझे जाते थे। बरात की प्रथा उस समय से प्रचलित है जब से कि लोग छोटे-छोटे दल बनाकर रहते थे। विवाह करने के लिये दूसरे पक्ष की कन्या को अपने साथियों की सहायता से फतह करके लेना होता था, योजनानुसार आक्रमण किया जाता था। घोड़े तथा हथियार उसी समय की यादगारें हैं। फिर यह केवल एक कोरी प्रथा ही रह गई। बरात और मिलनी जान-पहचान का भी एक साधन बन गया। वर पक्ष वालों का, कन्या पक्ष के लोगों के साथ परिचय हो जाता था और एक दूसरे के साथ मिल-जुल लेते थे।

पर क्या आजकल भी इसी आशय से बरात और मिलनी की प्रथाएँ प्रचलित हैं ? हमने बरात को एक ओर तो

सम्बंधियों की भाजी का रूप दे दिया है तथा दूसरी ओर अपनी मान-प्रतिष्ठा दर्शाने का साधन बना दिया है। जिसकी बरात में अधिक आदमी हों, हाथी, घोड़ों, मोटरों की बड़ी बहार हो, बैंड बाजा बड़ा शानदार हो, तो लोग देखकर कहते हैं—'वाह-वाह किसी बड़े सम्पन्न व्यक्ति का विवाह है'—केवल इतना ही कहलाने मात्र के लिये यह सारा आडम्बर प्रदर्शित किया जाता है। यदि कन्या पक्ष के लोग कहें कि बरात में ४० आदमी ले आइये, तो वर पक्ष के लोग कहते हैं कि हमारे सम्बंधी बहुत हैं, हमारी बरात में सौ सवा-सौ लोग होंगे।

बरात में कौन-कौन निमंत्रित हों ? यह बड़ा कठिन प्रश्न है जिसको बड़े-बूढ़े ही हल कर सकते हैं। अपने सम्बंधी और अपने गाँव के लोग जिनके साथ भाजी का लेनदेन हो, जिनके विवाह में तुम्हारे घर से कोई गया हो, तथा कुछ अन्य मित्रों को बरात में निमंत्रित किया जाता है। बरात में जाने वाले भी कई-कई महीने पहले से ही तैयारियां करते हैं, नए-नए कपड़े आदि तैयार कराते हैं। जिनको तुम बरात में निमंत्रित करो उनके घर से यदि कोई न आवे तो भविष्य में तुम्हें भी उनके किसी विवाह में सम्मिलित नहीं होना। हमारे भाई-चारे के कानून कितने सख्त हैं।

कन्या पक्ष की ओर से बरात की खूब आवभगत की जाती है—मिठाई, खीर, हलुवा, पूरियाँ आदि बनती हैं, फ़िरनी आदि तथा कई प्रकार के अंग्रेज़ी भोजन बनाए जाते हैं, चाय पार्टियाँ होती

हैं, एक दो रात तो बड़े राजसी ठाठ होते हैं। अन्त में परिणाम क्या होता है ? १०० में से ६० बराती तो बीमार हो जाते हैं, किसी को हैज़ा, किसी को पेट दर्द, किसी को कुछ का कुछ हो जाता है। फिर कहते हैं, "विवाह में तो ऐसा हुआ ही करता है ! यह कोई विशेष बात नहीं।" अच्छी विवाह-प्रथाएँ हैं हमारी !

मिलनी के भी वैसे ही नियम हैं जैसे विवाह के। उसमें नज़दीकी रिश्तेदारों को ले जाया जाता है। कुछ समय पहले तो आमतौर पर मिलनी पीछे जाया करती थी, परन्तु अब तो प्रायः मिलनी को बरात के साथ ले जाते हैं। मिलनी की संख्या भी दिनों-दिन बढ़ ही रही है।

पहले बरातों को दो रात ठहराने का रिवाज था—क्योंकि जो लोग लम्बी यात्रा करके पहुँचते थे उन्हें थकान दूर करने के लिये भी तो कुछ समय चाहिये था। आजकल बहुत से लोग तो एक रात ही बरात को ठहराते हैं परन्तु बहुत से लोग अब भी दो रात ही बरात को ठहराते हैं।

अब हमें इस बात पर विचार करना है कि बरात और मिलनी के क्या लाभ हैं। जिस आधार पर बरात की परिपाटी प्रारंभ की गई थी अब वह व्यर्थ हो गई है। अतः अब इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। बरात के पक्ष में दूसरी युक्ति यह दी जाती है कि इस के द्वारा आपस में जान-पहचान हो जाती है। परन्तु यह बात भी नहीं हो पाती। कन्या-पक्ष वाले बरातियों की आव-भगत में इतने अधिक व्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें उनसे मिलने-

जुलने का अवसर ही नहीं मिलता। वर, उसके पिता और भाई बन्धुओं को तो कन्या-पक्ष वालों ने देखा हुआ ही होता है। उनसे जान-पहचान पैदा करने का प्रश्न ही नहीं उठता। शेष बरातियों के साथ, जैसा कि ऊपर कहा गया है, मिलने-जुलने का अवसर नहीं मिलता। जिसके घर एक दम सौ-डेढ़-सौ व्यक्ति आजाएँ वह सब से कैसे परिचय प्राप्त कर सकता है। इसलिए यह बात नितान्त स्पष्ट है कि जिन बातों पर बरात के रिवाज की नींव रखी गई थीं वे आज पूरी नहीं हो रहीं। आजकल तो इस रिवाज का पालन अपनी बड़ाई के लिए किया जा रहा है। हमें सोचना चाहिये कि यह फ़जूल खर्ची कहाँ तक उचित है। हमारे सामाजिक रिवाज किस तरह आरंभ हुए थे, वे हमें आज कहां ले जा रहे हैं और इनके क्या-क्या बुरे परिणाम निकल रहे हैं। इन बातों पर विचार करते समय हमें एक बात स्मरण रखनी चाहिये कि भाई-चारे सम्बन्धी रीति-रिवाजों का सुधार सदा धनवान व्यक्तियों की ओर से आरंभ होता है। साधारण लोग सुधार का काम आरंभ नहीं कर सकते। यदि वे सुधार करने का साहस करेंगे भी तो लोग यही कहेंगे कि सामर्थ्य नहीं थी इसलिए इन्होंने ऐसा किया। थोड़ी सामर्थ्य वाले लोग अमीरों की रीस में वह काम कर बैठते हैं कि पीढ़ियों तक उसका ऋण नहीं उतरता। शादी-विवाह सम्बन्धी बुरे रिवाजों के दुष्परिणाम हर नगर, हर गांव और गली-कूचे में देखे जा सकते हैं। इस समय जब कि भारत के कोने-कोने और घर-घर में ग़रीबी ने डेरे डाले हुए हैं, इस बात

की बड़ी आवश्यकता है कि हम लोग अपने भाई-चारे के नियमों को बदलें। जब धनवान लोग रीति-रिवाजों को बदलेंगे तो शेष लोग भी उन्हें आसानी से बदल देंगे। अनेकों व्यक्ति रिवाजों का पालन करते रहते हैं—चाहे वे मन में उनके विरुद्ध ही क्यों न हों, क्योंकि बिरादरी के सामने 'नाक' रखनी बहुत आवश्यक है।

जो रुपया-पैसा विवाह-शादियों के अनावश्यक रीति-रिवाजों पर व्यय किया जाता है वह अन्य कई अच्छे-अच्छे कामों में लगाया जा सकता है।

विवाह में लड़का तथा उसके पिता (व माता), और साथ में एक-आध भाई-बहन जाने से भी विवाह सम्पन्न हो सकता है और बड़ी अच्छी तरह हो सकता है।

लेन-देन

हमारे भाई-चारा सम्बन्धी कई ऐसे रिवाज हैं जिन्हें देखकर हँसी आती है। छोटी-छोटी बातों में भी हम रीति-रिवाजों से बंधे हुए हैं और उनके उल्लंघन करने का साहस हम में नहीं है। स्त्रियों के अपनी पड़ौसनों के साथ बर्ताव को ही ले लो। इसी में आपको एक पूरा विधान मिल जाएगा। यदि पड़ौसन के घर कुछ 'भाजो' आदि भेजनी होगी तो वह केवल तभी भेजी जाएगी जबकि उसके यहां से पहले कभी कुछ आया हुआ होगा। यदि आप पहल करना चाहते हैं तो एक-दो बार भेज सकते हैं। यदि उसके बाद उनके यहां से कुछ न आवे तो बस भविष्य में उनके यहां भेजना बन्द हो जाएगा। यदि आप किसी पड़ौसी के घर जाएं और वह आपके यहां न आए तो बस फिर उसके यहां आपका जाना भी बन्द! यदि आप किसी के घर जाएं और वह आपकी कुछ ख़ातिर करे तो जब वह आपके यहां आए तो आप भी उसकी लस्सी-पानी से ख़ातिर कर दें। स्त्रियां इस तरह आस-पड़ौस में भाई-चारा प्रारम्भ करती हैं। 'भाजी' लेने-देने तथा एक-दूसरे के घर आने-जाने की दो पैड़ियां चढ़ लेने के बाद प्रेम बढ़ता जाता है। इसके बाद तीसरी पैड़ी 'शगन' की है। यदि पड़ौस की कोई बहन-बेटी विदा होकर जा रही हो तो मिश्री

के कूजे तथा बादाम आदि का 'शगन' और साथ में रुपया दो रुपया भी दिया जाता है। परन्तु यदि आपके घर से बहन-बेटी विदा हो रही हो और कोई पड़ौसन आपके यहां 'शगन' देने न आए तो बस 'भाजी' बन्द हो जाती है।

बच्चे के जन्म पर लड्डू बांटने पड़ेंगे। जिनसे अधिक मेल-मिलाप है उनके घर अधिक और जिनके घर थोड़ा है उनके घर थोड़े। उसके बाद उन सब लोगों का आपके घर में एकत्रित होना और 'शगन' देना परम आवश्यक है।

सारांश यह कि जिनसे आपका 'शगन' और 'भाजी' आदि का लेन-देन है उनके यहां अवसर आते ही आपने उनसे जो कुछ पहले लिया हुआ है वह सब कुछ उतार दो। सिर पर शगन और भाजियों का ऋण नहीं रहना चाहिये।

यह है हमारा पास-पड़ौस के साथ भाईचारा। सगे-सम्बन्धियों के साथ भी इसी तरह होता है। चाहे आप अपने गांव-नगर से कितनी भी दूर क्यों न हों, सगे-सम्बन्धियों की भाजी तो भुगतानी ही पड़ती है। जो किसी बहन-बेटी की सुसराल में जाओ तो वहां बच्चों से लेकर बड़ों तक सब को भेंट दो। ख़ास-ख़ास रिश्तेदारों के साथ ख़ास-ख़ास लेन-देन करना पड़ता है। बहन-बेटी को खूब रुपये देने पड़ते हैं। यदि बहन-बेटी मायके में आए तो उसे बहुत कुछ देना पड़ता है। आप से लेने के अधिकारी सम्बन्धियों की सूची बहुत लम्बी है। बहन, बेटी, उनके बाल-बच्चे, उनकी देवरानी, जेठानी और उनके बाल-बच्चे तथा सास,

ससुर, पति आदि सबकी भेंट-पूजा करनी पड़ती है। सारांश यह कि दर्जनों सम्बन्धी ऐसे हैं जिनको या तो कुछ देना पड़ता है या जिनसे कुछ लेना होता है। जीवन-पर्यन्त यह लेन-देन चलता रहता है।

एक और रिवाज का प्रचलन है। लोग एक-दूसरे के यहाँ विवाहों में 'न्यौता' डालते हैं। 'न्यौते' का अर्थ है कुछ रुपये। यदि किसी व्यक्ति ने आपके यहाँ विवाह में न्यौता दिया हुआ है और उसके यहाँ कोई विवाह होने वाला है तो आपको भी उसके यहां न्यौता डालना पड़ेगा। यदि आप यह लेन-देन उसके साथ भविष्य में भी रखना चाहते हैं तो जितने रुपये उसने न्यौते के आपको दिये हुए हैं उससे कुछ अधिक रुपया आपको उसके यहाँ देना पड़ेगा। यदि आप न्यौते का लेन-देन किसी व्यक्ति के साथ बन्द करना चाहते हैं तो बराबर का रुपया देकर बन्द कर सकते हैं।

इस प्रकार के हैं हमारे भाई-चारे के रिवाज! यह भाई-चारा केवल दो बातों की नींव पर खड़ा हुआ है—बदला और 'नाक'। जो आपके साथ जिस तरह बरते आप भी उसके साथ उसी तरह बरतें। जो कोई आपके यहां 'भाजी' भेजे, शगन डाले, न्यौता डाले या बरात में शामिल हो, आप भी उसका उसी तरह बदला चुकाएं। दूसरी चिन्ता हमें बिरादरी, पड़ौस और सगे-सम्बन्धियों के सामने अपनी 'नाक' रखने की रहती है। हम जो कुछ बहन-बेटियों, सम्बन्धियों और मिलने-जुलने वालों को देते

हैं वह प्रेमवश नहीं वरन् इस विचार से देते हैं कि हमारी नाक—हमारी मान-मर्यादा—बनी रहे और हमें उनके सामने लज्जित न होना पड़े। यदि हम न दें तो हमें उनके नाराज़ होने का भय बना रहता है। हम देने-लेने के मामले में प्रेम के बन्धन से नहीं वरन रिवाज के बन्धन से बंधे हुए हैं। जब हमें विवश होकर और सामर्थ्य न होते हुए भी रुपये, कपड़े, वस्तुएं आदि देनी पड़ती हैं तो प्रायः घर में बैठकर हम लोग कुढ़ते और खीझते हैं। यहाँ तक कि जिनको भेंटें देनी पड़ती हैं उनको मन-मन में गालियां देते रहते हैं। हम कभी अपने सगे-सम्बन्धियों को देख कर प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि उन्हें भेंट देने का प्रश्न हमारा लहू सुखाए रखता है। इसीलिये हमारा अपने सगे-सम्बन्धियों के साथ हार्दिक स्नेह नहीं होता। वास्तव में जहाँ लेने-देने का प्रश्न उपस्थित हो जाता है वहां स्नेह हो ही नहीं सकता।

लड़कियों का अपने भाई के साथ उतने समय तक ही हार्दिक प्रेम रहता है जब तक उनका विवाह नहीं होता। जब वह विवाह होने पर ससुराल चली जाती है तो उसके बाद लेन देन की दीवार भाई-बहिन के बीच में खड़ी हो जाती है।। इसी लेन-देन के झगड़े के कारण ननद-भौजाई की कभी नहीं बनती। इसके कारण हम अपने सगे-सम्बन्धियों के साथ मिलना-जुलना पसन्द नहीं करते। यदि मिलते हैं तो केवल इसलिये कि कहीं वे लोग नाराज़ न हो जाएं अथवा इसलिये कि यदि न मिलेंगे तो लोग

क्या कहेंगे ? यह दुखदायी स्थिति लेन-देन के बुरे रिवाजों का दुष्परिणाम है।

लेन-देन के बहुत से रिवाज हमारे उत्तराधिकार-सम्बन्धी कानूनों का परिणाम हैं। लड़कियों का मां-बाप की जायदाद में कोई अधिकार नहीं होता। इसके बदले उन्हें माता-पिता तथा भाई-भतीजों से आयु-पर्यन्त अनेकों अवसरों पर कुछ न कुछ मिलता रहता है। यह लेन-देन उनके पुत्र, पौत्र, पुत्रियों, दोहते, दोहतियों तक चलता रहता है। क्या यह अधिक अच्छा न होगा कि उन्हें पिता की जायदाद में अधिकार दे दिया जावे जिससे ननद-भावज, भाई-बहिन और मां-बाप का आयु भर का क्लेश दूर हो जाए ? यदि सगे-सम्बन्धियों में भी सच्चा, हार्दिक स्नेह न हो और हर घड़ी लेन-देन की खींचातानी चलती रहे तो फिर हमें जीवन में आराम व सुख का सांस किस तरह प्राप्त हो सकता है ? ये भी क्या रिवाज हैं जो पिता-पुत्री, भाई-बहन और ननद-भावज के बीच में दीवार का काम देते हैं और उनमें स्नेह बनाए रखने के स्थान पर उन्हें सदा एक-दूसरे से अलग-अलग रखते हैं।

अतिथि-सत्कार

भारतीय नारियां कुछ तो वैसे ही कोई काम करने के योग्य नहीं हैं, और कुछ हमारे सामाजिक रिवाजों और रूढ़ियों ने उन्हें इतना दबाया हुआ है कि वे बेचारी सिर ही नहीं उठा सकतीं। हमने स्त्रियों को केवल-मात्र रोटी बनाने की मशीन समझ रखा है—मानो उनका संसार रसोई-घर तक ही सीमित है। हमारे घरों में रसोई का काम लग-भग सारा दिन चलता रहता है। स्त्रियां ज्यौं सवेरे उठकर भोजन बनाने के काम पर जुटती हैं तो सोने के समय तक उसी काम में लगी रहती हैं। इसका एक कारण तो यह है कि हमारे यहां यह नियम नहीं है कि सब घर वाले किसी एक नियत समय पर ही भोजन करें। सब लोग अलग-अलग समय पर ही भोजन करते हैं। कोई सवेरे ६ बजे भोजन करता है तो कोई दोपहर के १ बजे। इसी प्रकार शाम को किसी का समय ७ बजे होता है तो किसी का रात के १० बजे।

दूसरा कारण हमारी अतिथि-सत्कार की रीति है। हमने अतिथि-सत्कार की ऐसी अनुचित रीति डाल ली है कि यदि कोई अतिथि दोपहर के दो बजे भी आजाए तो उसी समय उसके लिये भोजन तैयार करना पड़ता है। अतिथि भी दो बजे तक रास्ते-भर

भूखे रहेंगे, पर खाना घर पर ही आकर खाएंगे—दो बजे की कोई चिन्ता नहीं। हमें यदि किसी सम्बन्धी या मित्र के यहां जाना हो और गाड़ी चाहे रात के दस बजे पहुँचती हो, खाना हम वहीं पहुँचकर खाएंगे। हम सभी—पढ़े-अनपढ़—इसी रीति का पालन करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि एक तो वैसे ही हमारी 'घरवालियां' सारा दिन भोजन बनाने के चक्कर में फंसी रहती हैं और दूसरे आए-गए सज्जन और भी पूरी तरह उन्हें रसोई-घर की बन्दिनी बनाए रखते हैं।

किसी भी योरोपियन तथा अमरीकी राष्ट्रों में इस प्रकार के ऊट-पटांग रिवाज नहीं हैं। यदि कोई योरुपियन अपने मां-बाप के घर भी जा रहा हो और रास्ते में भोजन का समय हो जाए तो वह रास्ते में ही भोजन कर लेगा और घर पहुँच कर भोजन करने की प्रतीक्षा में भूखा नहीं रहेगा। हमारे यहां भी यदि प्रत्येक घर में भोजन करने का समय निश्चित् हो जाए तो स्त्रियों का भार कुछ हल्का हो जाए।

परन्तु हमारा अतिथि-सत्कार उपरोक्त बात तक ही सीमित नहीं है। यदि कोई अतिथि हमारे घर आवे तो जब तक हम हलुवा, खीर, पूरी और कई तरह की साग-भाजियां आदि उसके लिये न बनावें तो वह समझता है कि उसकी आव-भगत ही नहीं हुई। चाहे दिखावे के लिये वह कह भी दे कि "ओह! यह तो आपने बड़ा तकल्लुफ़ किया! आपने क्यों इतनी तकलीफ़ उठाई?" परन्तु हमें भी पता है और उसे भी पता है

कि इतनी ख़ातिर न की जाती तो उसके मन में क्या विचार और भावनाएँ उत्पन्न होतीं। इसीलिये यदि किसी के यहां अतिथि आ जायं तो वह समझता है कि उसके लिये तो मानो पहाड़ आ गिरा। उसकी जान को एक संकट खड़ा हो जाता है। इसका यह परिणाम है कि अतिथियों को देखकर हमारा मन प्रसन्न नहीं होता। अतिथियों को आया देखकर हम घबरा उठते हैं और परेशान हो जाते हैं।

जब कोई अतिथि आता है तो हम उसे भोजन के लिये पूछते हैं। वह दिखावा-मात्र के लिये कहता है, "जी, रहने दीजिये, मुझे तो बिल्कुल भूख नहीं है।" हम उसे एक-दो बार और कहते हैं, फिर भी वह यही कहता है, "कोई ख़ास भूख तो है नहीं।" परन्तु हम भी जानते हैं और वह अतिथि भी जानता है कि यह सब झूठ है। भूख से चाहे उसके प्राण निकल रहे हों और वह आया भी इसी आशा से हो कि 'घर' चलकर भोजन करेंगे, परन्तु हमारे देश में एक-दो बार ना-नुकर करने का भी अत्यन्त आवश्यक रिवाज है। और इस रिवाज का पालन भी उतना ही आवश्यक है जितना अन्य सामाजिक रिवाजों एवं रूढ़ियों का।

इस आव-भगत और सेवा-सत्कार के रिवाज से हमारे और अतिथि के बीच स्नेह-बंधन उत्पन्न होने नहीं पाता वरन् हमारे लिये 'अतिथि' हौवा बन जाते हैं और हम उनके दर्शन से भी घबराते हैं।

जाति-भेद

विविध जातियां कब बनीं और इनके बनने का क्या तात्पर्य था, इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इस विषय पर बड़े-बड़े विद्वानों और अनुसंधान-कर्त्ताओं में मत-भेद है और अनेकों मत एवं धारणाएं इस प्रश्न पर प्रचलित हैं। हाँ, इस मत पर सब सहमत हैं कि पहले-पहल चार बड़ी २ जातियाँ बनी थीं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। इन चार श्रेणियों को चार प्रकार के अलग २ काम सौंपे गए थे। उस समय यह बँटवारा बहुत लाभदायक था और चारों जातियों के लोग अपने २ काम में बड़े प्रसन्न एवं सुखी थे। परन्तु आजकल तो तौबा ही भली! यदि जातियों की गणना करने लगें तो उनका कोई अन्त ही नहीं। प्रत्येक बड़ी जाति के सैंकड़ों-हज़ारों भेद-उपभेद हो गए हैं। इन छोटी २ उपजातियों की न तो किसी ने गणना की है और न ही कोई गणना करने का साहस कर सकता है। साहस हो भी कैसे? भारत के प्रत्येक प्रान्त में प्रत्येक बड़ी श्रेणी की अलग २ उपजातियाँ और अलग २ गोत्र आदि हैं। कई जगह तो यहाँ तक देखने में आया है कि ज़िले-ज़िले और तहसील-तहसील में उनमें बहुत अन्तर हो गया है।

प्रश्न यह होता है कि ये छोटी २ जातियाँ क्यों और कैसे

बनीं ? यह प्रश्न वास्तव में बड़ा जटिल और उलझावदार है। बड़े-बड़े विद्वान् अब तक इसका सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके हैं। हाँ, इतनी बात अवश्य स्पष्ट है कि बहुत सी जातियाँ किसी कुटुम्ब-विशेष के व्यक्तियों की बनी हुई हैं और अन्य बहुत सी जातियों की नींव में भिन्न २ काम-धन्धे एवं व्यापार आदि हैं। यदि किसी वंश के किसी पूर्वज का काम बज़ाज़े का था तो उस वंश के लोगों का 'अल्ल' ही 'बज़ाज़' पड़ गया। मुग़ल शासन-काल में 'क़ानूंगो' के पद पर काम करने वालों के वंश की उपजाति 'क़ानूंगो' बन गई।

विशेष २ काम-धन्धों आदि के कारण कुछ जातियाँ एवं अल्ल बने—यह बात तो प्रकट है, परन्तु कितनी ही अन्य ऐसी जातियाँ हैं जिनका प्रारम्भ किसी और कारण से हुआ। कई तो किसी वंश के किसी बड़े विख्यात व्यक्ति के नाम से ही बन गई प्रतीत होती हैं। कई जातियों के नाम इतने ऊट-पटांग हैं कि समझ में ही नहीं आता कि ये नाम क्यों और किस तरह रखे गये।

जिन जातियों की नींव काम-धन्धों पर रखी गई है उनमें भी बहुत मत-भेद है क्योंकि एक तो प्रत्येक प्रान्त में हर काम-धन्धे के आदमी मिल जाते हैं और वे सब एक ही वंश के नहीं होते। दूसरे काम-धन्धों से अल्ल बन जाने का रिवाज किसी एक प्रान्त में प्रारम्भ होता है और फिर देखा-देखी साथ वाले प्रान्तों में भी प्रारम्भ हो जाता है। वंशों से बनी हुई जातियाँ एक भी नाम की कई जातियाँ हो सकती हैं क्योंकि हमारे देश में मनुष्यों

के ऐसे नाम नहीं हैं जो प्रत्येक व्यक्ति के अलग-अलग हों। एक नाम के कितने ही मनुष्य मिल सकते हैं। एक जाति के सारे व्यक्ति किसी एक वंश के नहीं हो सकते, न ही उनकी नींव किसी एक ही बात पर रखी गई प्रतीत होती है।

देखना यह है कि जातियों के जो वास्तविक नियम एवं धर्म बतलाये जाते हैं क्या वे आजकल उनका पालन कर रहे हैं ? क्या ब्राह्मण ईश्वर-पूजादि का काम करते हैं ? क्या क्षत्रिय लोग शस्त्र धारण करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर दीन-हीनों की रक्षा करते हैं ? क्या वैश्य कार-व्यवहार और व्यापार करते हैं ? तथा क्या शूद्र सेवा का काम करते हैं ? यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो पता लगेगा कि चारों जातियों में से यदि कोई जाति आज तक अपने नियत धंधे द्वारा रोटी खाती है तो वह केवल शूद्र जाति है। शेष सब जातियों के ढंग बदल गये हैं। घाटा भी बेचारी इस शूद्र जाति के पल्ले पड़ा है। हम देखते हैं कि आजकल जातियाँ विशेष-विशेष मतलब के लिए काम आती हैं। श्राद्धों, व्रतों तथा त्यौहारों आदि पर ब्राह्मण लोग खूब पूजे जाते हैं। यदि किसी को किसी प्रकार की पूजा आदि करानी हो तो इन्हीं की पूछ-ताछ होती है, परन्तु इस का यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक ब्राह्मण को वेद-पाठ आदि का ज्ञान होता है, अथवा वे बड़े विद्वान् होते हैं। सच तो यह है कि आजकल के सैंकड़ों ब्राह्मणों में से कोई एक-आध ही ऐसा होता है जो थोड़ी-बहुत संस्कृत जानता हो और कुछ वेद-मंत्र जिसने

याद कर रखे हों। विद्वान् ब्राह्मण तो ढूँढ़े से कोई एक-आध ही मिलता है। उनके मुकाबले में कई गैर-ब्राह्मण बड़े विद्वान् होते हैं। निर्वाह करने के लिये अनेकों ब्राह्मण सैंकड़ों अन्य काम-धंधे करने लग गये हैं। परन्तु फिर भी उनमें जाति-अभिमान नहीं जाता। स्टेशन पर पानी पिलाने का काम करने वाला ब्राह्मण भी बड़े गर्व से कहेगा—मैं ब्राह्मण हूँ। रसोई बनाने वाले ब्राह्मण अपने साथ वही काम करने वाले गैर-ब्राह्मणों को घृणा की दृष्टि से देखेगा और अपने को ऊँचा समझेगा। इसी प्रकार के और काम करते हुए भी उनका जातीय गर्व कम नहीं होता।

यही हाल शेष जातियों का है। सब जातियाँ किसी को अपने से ऊँची और किसी को नीची समझती हैं। यह ऊँच-नीच का भाव भिन्न-भिन्न जातियों में ही नहीं है, वरन् एक जाति के भिन्न-भिन्न गोत्रों में भी उतना ही तीव्र है। नीची कहे जाने वाली एवं 'दलित' जातियों में भी आपस में एक-दूसरे के प्रति यह ऊँच-नीच का भाव विद्यमान है। जातियों का एक-दूसरी के साथ भयंकर भेद-भाव ही नहीं वरन् वैर-भाव तक भी विद्यमान है।

यह जाति-भेद रिश्ते-नाते करते समय बड़े उग्र रूप में हमारे सामने आ उपस्थित होता है। यह परम आवश्यक है कि हमारे लड़के-लड़कियों के सम्बन्ध जाति-विशेष में हों। उस सीमा से बाहर चाहे कितना ही अच्छा रिश्ता उपलब्ध हो, कितनी ही अच्छी, स्वस्थ, सुन्दर पढ़ी-लिखी लड़की हो और कितना ही प्रतिष्ठित उसका घराना हो, परन्तु हम अपने लड़के का रिश्ता

उससे कदापि नहीं करेंगे यदि वह हमारी जाति की नहीं है। यही बात लड़कों के सम्बन्ध में है। अपनी जाति में उचित लड़का या लड़की न मिलने से चाहे रिश्ता वर्षों तक न होने पाए, यही नहीं चाहे लड़का या लड़की का रिश्ता बिल्कुल ही न हो सके और वे आयु-पर्यन्त कँवारे बैठे रहें, परन्तु यह नहीं हो सकता कि बाहर की जाति में रिश्ता कर दिया जावे—चाहे बाहर कोई अच्छा एवं उचित लड़का या लड़की आसानी से ही क्यों न उपलब्ध हो। यदि कोई व्यक्ति साहस दिखाकर अपनी जाति से बाहर रिश्ता कर भी ले तो स्त्रियाँ उसका जीना दूभर कर देती हैं। उन्हें तो दूसरी जातियों के लोग मानो मनुष्य ही नहीं लगते। युक्तियों एवं बहस की वहाँ गुंजाइश ही नहीं है। उनका तो एक ही उत्तर है—"जो बड़े करते आए वही रीति ठीक है। हमें भी वही करना चाहिये।" अन्य किसी बात में वे चाहे पूर्वजों की बात का पालन करें या न करें, परन्तु जाति-भेद, जाति विशेष में रिश्ते-नाते करने तथा विवाह में रीति-रिवाजों के पालन में वे अवश्य लकीर की फ़कीर बनी रहना पसन्द करती हैं। हमारी पड़दादी ने साड़ियों के दर्शन भी न किये हों, परन्तु हमारे घरों में आजकल सब स्त्रियां साड़ियाँ पहनती हैं और न जाने कितने-कितने फैशन करती हैं। परन्तु जहां जात-पात का प्रश्न आ जाए वहाँ वे पूर्वजों की दुहाई देने लग जाती हैं।

स्त्रियों का सामाजिक व्यवहार ऐसा दृढ़ होता है कि यदि कोई स्त्री किसी सामाजिक रूढ़ि, परम्परा एवं रीति-रिवाज से थोड़ी-सी

भी इधर-उधर हो जाए तो आस-पड़ौस और रिश्ते की स्त्रियाँ उसका जीना दूभर कर देती हैं। काश ! स्त्रियों का यह भाईचारा किसी अच्छे काम में लगता !

जातियों के सम्बन्ध में हमने एक और नया रिवाज अपना लिया है। अंग्रेज़ों की देखा-देखी हम अपने नामों के साथ जाति लगाने लगे हैं। और अंग्रेज़ों की भांति ही अपने नाम के प्रारम्भिक अक्षर अपनी जाति के नाम से पहले लिखकर हमने अपना नाम रखने की प्रथा स्वीकार करली है। के० एम० मलहोत्रा, डी० सी० बजाज—इस ढंग पर नाम रखने का आजकल आम रिवाज है। अंग्रेज़ों अथवा अन्य योरुपियन लोगों में तो नाम वंश पर रखे जाते हैं। परन्तु हमने अपनी ही प्रथा निकाली है। हम अपनी जाति एवं उपजाति को अपने नाम के साथ लगाकर ही 'साहब' बनने की कोशिश करते हैं और अपने को 'मलहोत्रा साहब' 'भल्ला साहब' 'अग्रवाल साहब' आदि नामों से पुकारे जाने के बड़े शौकीन हैं। कई बार तो हम 'साहब' बनने की धुन में अपनी जाति का नाम ऐसा बिगाड़ देते हैं कि सुनने या पढ़ने वाले को वह अंग्रेज़ी शब्द एवं नाम लगने लगे।

जातियों का आजकल लाभ कोई नहीं है। यदि है तो उनसे हानि ही हानि है। रिश्ते-नातों में इस प्रथा से अड़चन पड़ती है और देश में एकता का भाव उत्पन्न नहीं हो पाता। जातियों के ऊँच-नीच के भाव ने हम में झूठा गर्व अथवा अनावश्यक लघुता का भाव भर दिया है। 'शूद्रों' की हमने कुत्तों से भी बुरी

दशा बना छोड़ी है। हम उनके साथ इस तरह का व्यवहार करते हैं मानो वे मनुष्य ही नहीं हैं। यदि मिस मेओ जैसे व्यक्ति हमें हमारा वास्तविक रूप दिखाएँ तो हम तड़प उठते हैं, परन्तु अपने घर की गन्दगी को दूर करने का प्रयत्न नहीं करते।

प्रत्येक जाति में प्रत्येक प्रकार के लोग मिलते हैं। हम यह नहीं कह सकते कि अमुक जाति के लोगों में अमुक स्वभाव या गुण है। यदि किसी जाति-विशेष में कोई विशेष गुण या स्वभाव की बात ठीक थी भी तो वह पुराने युग में होगी—आजकल तो इसमें लेश-मात्र भी सचाई नहीं है।

जब तक हम इस जाति-प्रथा की जड़ों में तेल नहीं देंगे तब तक हमारे बहुत से दुःख दूर नहीं होंगे। हममें से जिन लोगों में साहस है वे जाति-भेद की परवाह न करते हुए रिश्ते-नाते करें। बदनाम हुए बिना सुधार नहीं हो सकता। आज यदि हम सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में साहस दिखाएंगे तो आने वाली सन्ततियाँ आसानी से हमारा अनुसरण कर सकेंगी।

पर्दा

पर्दे (घूंघट) का रिवाज कब से प्रारम्भ हुआ तथा इसका क्या उद्देश्य था—इस सम्बंध में अधिक विचार की आवश्यकता नहीं है। प्रारम्भ होने का चाहे कुछ भी कारण और उद्देश्य हो, परन्तु जिस रूप में यह आजकल प्रचलित है वह मूर्खता का एक चिह्न है। हम पर्दा अपनों के लिये प्रयुक्त करते हैं, परायों से पर्दा करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती। रिश्तेदार और पति के कुटुम्बी ही घूंघट के अधिकारी हैं, अन्य सब के सामने पूरी स्वतंत्रता है। गली में फेरी वाले आएँ, छाबड़ी वाले आएँ, भिखमंगे, फ़कीर आदि आएँ, ज्योतिषी, जोगी, संन्यासी, 'गोशाला' वाले, 'अनाथालय' वाले आएँ, ब्राह्मण एवं मौलवी आएँ, मदारी और अन्य तमाशे वाले आएँ, स्त्रियों को कोई परवाह नहीं। परन्तु यदि जेठ, ससुर अथवा कोई अन्य बड़ा दूर से भी दिखाई दे जाए तो तुरन्त घूंघट निकाल लिया जाता है। यह पर्दा है या मज़ाक़!

हमारे यहाँ घूंघट केवल विवाहित स्त्रियों के लिये है, कंवारियों के लिये उसका विधान नहीं है। वे वैसे ही परायों से छिपाई जाती है। हां, भारत के कई प्रदेशों में रिवाज है कि वहाँ कंवारी लड़कियाँ सिर खुले रखती हैं।

आमतौर पर भारत में सिर खुला रखना निर्लज्जता की निशानी समझी जाती है। यदि बाल संवारते २ सहसा कोई पुरुष आ निकले तो स्त्री तुरन्त सिर पर कपड़ा लेने का करती है। यदि पास में कोई कपड़ा उपलब्ध न हो तो वे सिर पर हाथ ही रख लेती हैं। जिस दिन से लड़की का विवाह हो जाता है उस दिन से उसके लिये घूंघट निकालना आवश्यक हो जाता है। नव-विवाहिता तो कुछ दिनों तक अपने पति के सामने भी घूंघट निकालती है। साल छः महीने के पश्चात् उन्हें कुछ स्वतंत्रता मिलती है। परन्तु बड़ों के सामने तो आयु-पर्यन्त घूंघट निकालना पड़ता है। यदि बेध्यानी अथवा बेहोशी में भी कभी उनके सामने घूंघट निकलने से रह जाए तो जब उन्हें इस बात का ज्ञान होता है तो वे पानी-पानी हो जाती हैं और कहती हैं—"हाय! हाय!! वे क्या कहेंगे? इतनी निर्लज्ज हो गई!"

गली-बाज़ार में जाते हुए पति का कोई मित्र मिल जाए तो घूंघट निकालकर उसका आदर किया जाता है। ससुराल में गली-मुहल्ले के सब व्यक्तियों से घूंघट निकाला जाता है। परन्तु मायके में किसी से पर्दा नहीं किया जाता।

ये हैं हमारे यहाँ घूंघट-पर्दे के नियम। इनका उल्लंघन करना बड़ा भारी अपराध समझा जाता है। हमारा समाज इस अपराध को बड़ी घृणा से देखता है।

परन्तु हमारी आँखों के सामने क्या हो रहा है? दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गई है! कहाँ तो गज़-गज़ लम्बा घूंघट और कहाँ

यह हाल कि सिर पर से कपड़ा बिल्कुल ही उड़ गया है। आजकल की फैशन-परस्त नारियां या तो सिर पर कपड़ा बिल्कुल रखती ही नहीं या नाम-मात्र को कपड़ा डाल लेती हैं, परन्तु वह वास्तव में सिर पर नहीं वरन् कंधों पर पड़ा रहता है। रीति-रिवाजों का अन्त यही हुआ करता है। रीति-रिवाजों का प्रारम्भ समय की आवश्यकता के अनुसार हुआ करता है, परन्तु मानव इतना प्रतिक्रियावादी है कि जो भी प्रथाएँ एक बार पड़ जाएँ वह परिस्थिति बदलने पर भी उन्हें त्यागने के लिये तैयार नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि प्रथाएँ केवल-मात्र लकीर बन जाती हैं—निर्जीव, निरर्थक, सारहीन! फिर कोई ऐसी हवा चलती है कि पुराने रिवाज जड़ से उखड़ जाते हैं और उनका निशान तक शेष नहीं रहता। कई बार यह भी होता है कि हम आग में से बचकर निकलते हैं परन्तु कुएँ में छलांग लगा बैठते हैं। सती का रिवाज गया तो साथ ही पतिव्रत-धर्म भी जाता रहा। इसका यह अर्थ नहीं है कि पतिव्रत-धर्म के लिये सती की प्रथा अनिवार्य है। तात्पर्य यह है कि जब ऐसा समय आ गया था कि सती की प्रथा केवल छायामात्र रह गई थी तो हमें चाहिये था कि समय की आवश्यकता को देखते हुए इसमें परिवर्तन कर देते। परन्तु हमने इस सम्बंध में कुछ नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि सती की प्रथा तो उठ गई पर साथ ही उसका आदर्श भी जाता रहा। यही हाल घूंघट की प्रथा का हो रहा है। हमने उसके वास्तविक अर्थ एवं आवश्यकता को भुला दिया है—केवल

छाया को हम लोग पकड़े बैठे हैं।

यह कैसा पर्दा है जो केवल अपनों से किया जाता है। परायों के लिये उसकी कोई आवश्यकता नहीं। आजकल की परिस्थिति में पर्दा बिल्कुल व्यर्थ है। जितनी जल्दी इसको समाप्त किया जा सके उतना ही अच्छा है। अब इस सम्बंध में कोई विशेष युक्ति देने की भी आवश्यकता नहीं है। कोई भी समझदार स्त्री आजकल घूंघट निकालना पसंद नहीं करती। फैशन ने पहले ही इस पर तीव्र आक्रमण कर दिया है। कुछ वर्षों में इसका निशान तक नहीं रहना। पुराने विचारों के लोग कहते हैं कि स्त्रियां बड़ी निर्लज्ज हो गई हैं। परन्तु वास्तविक बात यह है कि वे निर्लज्ज नहीं वरन् स्वतंत्र हो गई हैं। पहले वे पुरुष के पंजे में फँसी हुई थीं अब अपने पाँव पर खड़ी हो गई हैं। जो थोड़ी-बहुत स्त्रियां अब भी घूंघट निकालती हैं, उनमें से बहुत कम अपनी मर्ज़ी से निकालती हैं। बहुत-सी तो केवल बड़ों के डर से ही निकालती हैं। इस तरह के बन्धन आख़िर कब तक रहेंगे ?

जन्म-मरण

हमारे समाज में स्त्री का मूल्य सन्तान से है। सन्तान न हो तो स्त्री का जीवन दुखी समझा जाता है। पहली सन्तान का जन्म होने पर बड़ी खुशी मनाई जाती है, परन्तु शर्त यह है कि वह सन्तान लड़का हो। लड़की का जन्म होना तो दुर्भाग्य की बात समझी जाती है। इसलिये जन्म-सम्बन्धी सारे रीति-रिवाजों का पालन लड़के के जन्म पर ही किया जाता है। लड्डू बाँटने, शगन डालने, बालक की माता को रुपये, कपड़े देने आदि के कार्य पुत्र का जन्म होने पर ही किये जाते हैं। बालक के माता-पिता का खर्च काफ़ी होता है, परन्तु उगाही भी काफ़ी हो जाती है। मायके वालों से, ससुराल वालों से, पति के मिलने-जुलने वालों से, गली-मुहल्ले वालों से तथा सगे-सम्बन्धियों आदि से—सब से—प्राप्त होती है। और यह उगाही कौनसी एक दिन में समाप्त हो जाती है; यह तो महीनों ही नहीं, वर्षों चलती रहती है।

यदि पुत्र के जन्म पर कुछ न किया जाए तो सब धिक्कारने लगते हैं। परन्तु यह न समझें कि बालक के माता-पिता स्वयं कुछ नहीं करना चाहते। वे तो खुशी से फूले नहीं समाते। उन्हें आप ऐसे अवसरों पर अपनी शान दिखाने का चाव रहता है। इसी-लिये हम देखते हैं कि दिनों-दिन बच्चों से सम्बन्धित रीति-रिवाज

बढ़ रहे हैं। लड़के के जन्म, उसके जन्म-दिन, उसका नाम रखने, उसे अन्न खिलाना शुरू करने, मुंडन (अथवा केश गूंथने), विद्यारम्भ, कक्षाओं में चढ़ने, इत्यादि अनेक अवसरों पर आए दिन अनेकों प्रथाओं का चलन बढ़ने लगा है। ऐसे अवसरों पर धूम-धाम करनी, मित्रों, सगे-सम्बन्धियों और बड़े-बड़े लोगों को एकत्रित करना, किसी न किसी प्रकार की पाठ-पूजा आदि करनी, पार्टी देनी, और फिर समाचार-पत्रों में समाचार निकलवाना— इन्हीं बातों में हम लोग बड़ा गौरव समझते हैं। यही बातें करके हम लोग प्रसन्न होते हैं। हमारी खुशियाँ और बड़ाइयाँ भी विलक्षण प्रकार की हैं। लोगों से वाह-वाह सुनने के लिये हम लोग कितने ही आडम्बर रचते हैं। कितनी फ़िजूल रस्मों का जाल दिन-प्रतिदिन फैलता जा रहा है। बालक के जन्म की खुशी तो अपनी जगह ठीक है, परन्तु इन नित-नई बढ़ती हुई प्रथाओं ने लोगों का नाक में दम कर रखा है।

लोग आप ही कुछ कम नहीं हैं, फिर दुनिया नहीं जीने देती। लड़का पैदा हो तो हीजड़े ही द्वार पर आकर डट जाते हैं, माँगने वालों, 'कर्मियों' आदि का तांता बंध जाता है। आस-पड़ौस की स्त्रियाँ घेरा डाल देती हैं। पाठशाला में प्रवेश के लिये बच्चे को ले जाओ तो पहले मुंशी जी लड्डू माँगते हैं। ऐसी हालत में कोई इन फ़िजूल रस्मों को छोड़ना भी चाहे तो कैसे छोड़ सकता है? परन्तु जो लोग साहस दिखा सकते हैं उन्हें चाहिये कि वे भाई-चारे एवं बिरादरी तथा सगे-सम्बन्धियों की परवाह न करके

तथा उपहास, घृणा, अथवा 'बदमाश' होने की परवाह न करके सुधार का कार्य करें और समाज को सही रास्ता दिखाएं।

खुशी दिखावे की चीज़ नहीं है, यह तो मन का भाव होता है। दिखावे की खुशियाँ झूठी खुशियाँ होती हैं। ऐसी खुशियों से मन प्रसन्न नहीं होता। यही नहीं, बल्कि बाद में क्रोध और उलाहने की बहुत सी बातें निकलती हैं, और दुख उत्पन्न होता है। इन कारणों से वह क्षणिक खुशी भी लुप्त हो जाती है। एक और बात भी है। कोई भी व्यक्ति सब को खुश नहीं कर सकता। कोई न कोई व्यक्ति ऐसे अवसरों पर नाराज़ हो जाता है। क्या इसकी अपेक्षा यह अधिक अच्छा नहीं कि घर के ही लोग मिल कर खुशी मना लें। जहाँ दिखावे की खुशी है वहाँ हार्दिक आनन्द नहीं हो सकता।

हम लोग खाने-पीने और घूमने-फिरने में बहुत कम पैसा खर्च करते हैं क्योंकि हमारा बहुत-सा रुपया इन निरर्थक रीति-रिवाजों पर नष्ट हो जाता है। कोई पैदा हो तो भी खर्च, कोई मरे तो भी खर्च। बिना पैसे के किसी की मृत्यु भी नहीं सम्भाली जा सकती। हमारे यहाँ के तो मुर्दों के लिये जलना दफ़न होना एक कठिन, खर्चीला काम है। कई ब्राह्मण, मुल्ला, ग्रंथी, तथा 'कर्मी' आदि ऐसे समय की प्रतीक्षा करते रहते हैं। हरिद्वार के पंडे हज़ार-हज़ार रुपया प्रतिदिन पैदा कर लेते हैं। परन्तु फिर भी जब वे इकट्ठे बैठकर आपस में बातें करते हैं तो कहते हैं—"कुछ नहीं जी, आजकल तो कोई कमाई ही नहीं होती। कोई हैज़ा, प्लेग

पड़े तो बात बने।" यही हाल अन्य जातियों के पुजारियों का है। हम किस भावना से प्रथाएं पूरी करते हैं और रुपये खर्च करते हैं और वे लोग किस भावना से दान-दक्षिणा लेते हैं। उन लोगों ने वास्तव में सब रीतियाँ अपने पेट के लिये घड़ी हुई हैं। हमारी भावनाओं और विश्वासों का वे लोग अनुचित लाभ उठाते हैं। वे अपने लाभ-हानि की चिन्ता करते हैं, हमारी नहीं।

किसी की मृत्यु पर क्या खर्च नहीं होता? अन्त-समय की प्रथाएँ, दान, फिर किरिया, फिर बरसी आदि कई आडम्बर हैं। यदि कोई वृद्ध मरता है तो और भी अधिक खर्च होता है। यदि हम ठंडे दिल से विचार करें तो इनमें से बहुत सी प्रथाएँ बिल्कुल व्यर्थ हैं। उनका लाभ केवल निकम्मे आदमियों एवं मुफ्त-खोरों की संख्या बढ़ाना तथा उन लोगों का पेट पालना है। काश! यह रुपया तथा शक्ति किसी अच्छे काम में खर्च हो!

शोक और विलाप

जन्म और विवाह के दिन के बाद हमारे जीवन में तीसरा महत्त्वपूर्ण दिन मृत्यु का दिन है। पहले दो दिन आनन्द के हैं और तीसरा शोक का। संसार के सभी देशों में किसी के मरने पर शोक मनाया जाता है; मरने पर खुशी नहीं मनाई जाती। प्रत्येक देश, राष्ट्र एवं जाति में शोक मनाने की अपनी २ अलग प्रथायें हैं, परन्तु रोना सब प्रथाओं में शामिल है। हां, रोने के ढंग भिन्न-भिन्न हैं। मृत्यु का समय ऐसा होता है कि कठोर से कठोर हृदय भी पिघल कर बह निकलता है।

हमारे यहाँ शोक-सम्बंधी प्रथाएँ भी निरर्थक प्रथाएँ मात्र बनकर रह गई हैं। ऐसे अवसरों पर जो विलाप किया जाता है, वह भी अधिकांश रूप में दिखावा होता है। हमारे विलाप, 'स्यापा' 'बैन' एवं रुदन केवल दुनिया को सुनाने के लिये किये जाते हैं। हम किसी के मरने पर जो कुछ करते हैं अपना नाक रखने के लिए करते हैं। सब रोना, पीटना झूठा और कृत्रिम होता है। हमारी सहानुभूति भी एक प्रकार की 'भाजी' है। अपनों को चाहे हम सच्चे हृदय से रोते हों परन्तु परायों का दुःख-दर्द बांटना तो देने-लेने की भाँति सामाजिक व्यवहार मात्र रह गया है। यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे किसी कुटुम्बी एवं संबंधी की मृत्यु पर

शोक प्रगट करने आया हो तो तुम्हारा भी कर्तव्य है कि उसके यहां किसी के मरने पर जाओ, अन्यथा वह बुरा मान जायगा। यह बदला आने जाने तक ही सीमित नहीं है वरन् मृत्यु की सूचना देने के लिए जो चिट्ठियाँ लिखी जाती हैं उनमें भी यही हिसाब-किताब रखा जाता है। यह है हमारी सहानुभूति और समवेदना का नंगा रूप।

जब किसी का कोई मरता है अथवा किसी स्थान पर किसी सगे-सम्बन्धी के मरने की चिट्ठी आती है तो उसी समय नाइन सब गली-मोहल्ले में बुलावा देने चल पड़ती है। थोड़ी सी देर में सारा गली-मोहल्ला इकट्ठा हो जाता है. पुरुष बाहर बैठ जाते हैं और स्त्रियां अन्दर बैठ जाती हैं। पुरुष साधारणतया चुपचाप ही बैठे रहते हैं। उनमें से जिन्हें रोना होता है वे थोड़ी देर ढाढ़ें मार-मार कर रो लेते हैं। शेष व्यक्तियों में से जो आता जाता है, वह कुछ निश्चित से शब्द कहकर बैठ जाता है। लोग कहते हैं, "क्या कहें! परमात्मा की यही मर्ज़ी थी।" इसी तरह धीरे-धीरे सब लोग एकत्रित हो जाते हैं। फिर धीरे-धीरे जो व्यक्ति मर गया है उसकी बातें छिड़ जाती हैं। उसकी बीमारी का तथा अन्त समय का हाल सुनाया जाता है। उसके गुणों का बखान होता है। सब उसके संबंध में कुछ न कुछ कहते हैं। इस तरह कुछ देर तक बातें होती रहती हैं। फिर स्वर्गवासी के घर का बड़ा सब को कहता है, "आप लोगों को काम पर जाना होगा।" सब लोग उठकर जाने लग जाते हैं। इसी प्रकार सारा

दिन लोग आते रहते हैं और यही बातें दोहराई जाती हैं।

उधर स्त्रियों का ढंग अलग ही होता है। उनका स्यापा एक भयानक एवं रौद्र दृश्य उपस्थित करता है। स्त्रियाँ अपने शरीरों को बहुत बुरी तरह कूटती-पीटती हैं। वे छाती और माथे पर दुहत्थड़ मारती हैं, अपने गालों पर थप्पड़ मारती हैं और बालों को नोचती हैं। अपने को कूटते हुए वे 'हाय, हाय!' शब्द चिल्लाती हैं। पीटने और चिल्लाने की आवाज़ें इकट्ठी निकाली जाती हैं। क्या मजाल जो तनिक भी अन्तर पड़ जाए। यदि कोई स्त्री हाथ कुछ नरम मारे या आवाज़ हल्की निकाले तो साथ वाली स्त्रियाँ उसे धिक्कारती हैं। यदि आप कभी पंजाब का स्यापा देखें तो आप आश्चर्य-चकित हो जाएंगे कि स्त्रियां सैनिक परेड कहां से सीखती हैं। इतने एकसार हाथ पड़ते हैं कि कमाल हो जाता है।

जब स्यापा हो चुकता है तो वे बैठकर 'पल्ला' लेती हैं और बैन करती हैं। इसमें वे बड़े तुक और लय के साथ रोती हैं और मरने वाले के गुण बखान करती हैं। जब तक कोई पल्ला न छुड़ाए स्त्री बैन करना नहीं छोड़ती। घर वालियों का पल्ला बाहर वाली छुड़ाती हैं और बाहर वालियों का घर वालियाँ। परन्तु एक बार के कहने पर कोई स्त्री पल्ला नहीं छोड़ती। हरेक को दो-तीन बार कहना पड़ता है। यदि एक ही बार के कहने पर कोई स्त्री पल्ला छोड़ दे तो अन्य स्त्रियां सौ बातें बनाती हैं—"हाय! हाय! उसे तो कहने भर की देर थी। जैसे वह प्रतीक्षा ही कर रही हो।"

इस तरह करते कराते सारा दिन बीत जाता है। फिर एक-दूसरी को कह-सुनकर उठती-उठाती हैं और अपने-अपने घरों को चली जाती हैं।

जिस दिन मृतक का शोक मनाया जाता है उस दिन उस घर में रोटी-पानी का काम बन्द रहता है। आग तक भी नहीं जलाई जाती। बालकों को आस-पड़ौस के लोग जबर्दस्ती दो-चार ग्रास खिला जाते हैं। परन्तु बड़े कुछ नहीं खा-पी सकते। परन्तु देखने में यह आता है कि वे भी अँदर जाकर चोरी-छुप्पे खा-पी लेते हैं। अथवा पड़ौसियों के घरों से भोजन बनकर आता है और पड़ौसी उन्हें खाने के लिए विवश करते हैं। और वे ऊपर से तो ना-ना करते रहते हैं, कहते रहते हैं, "कौन रोटी खाए? मन बिल्कुल नहीं मानता।" परन्तु थोड़ा-बहुत भोजन कर ही लेते हैं। इस प्रथा का तात्पर्य यह होता है कि खाना अपने यहां न बने। खाना उस दिन पड़ौसियों के घरों से आने की भी एक आवश्यक प्रथा है। अपने घर में खाना बन जाए तो लोग जीने भी न दें। स्त्रियों के बैन सुनकर ऐसा लगने लगता है मानो यह भी मरने वाले के साथ मरेंगी, परन्तु ऐसा नहीं है। स्त्रियों का तो यह नित्य-प्रति का ही काम है। नित्य-प्रति ही उन्हें आस-पड़ौस में तथा मिलने-जुलने वाले और सगे-सम्बन्धियों के यहां यह नाटक रचने जाना पड़ता है। वे रासधारियों की भांति अथवा सिनेमा अभिनेत्रियों की भांति जब जी चाहें आँसू बहा डालती हैं या खिल-खिला कर हँस पड़ती हैं। उन्हें अपने ऊपर इतना काबू होता है।

करें भी क्या, बेचारियों को यह सब सीखना पड़ता है। जिस स्त्री को रोना-पीटना या बैन करना न आता हो उसे सगे-सम्बन्धी और गली-मोहल्ले वाले जीने न दें। स्त्रियों के लिये यह सब से आवश्यक गुण एवं कला है। इसके बिना भाईचारा नहीं निभ सकता।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इस रोने-पीटने का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सच तो यह है कि इस नित्यप्रति के रोने-पीटने के कारण स्त्रियों के स्वास्थ्य का सत्यानाश हो जाता है। वे चूंकि नित्यप्रति यही कुछ करती रहती हैं इसीलिए वे थोड़े ही दिनों में बूढ़ी हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त छोटे २ बच्चों के स्वास्थ्य पर भी इस प्रथा का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। जिन्हें नित्यप्रति छाती कूटनी हुई, उनके बच्चों ने तो उनका दूध पी कर आप ही बीमार होना हुआ। दूसरे देशों के सामने हम बड़ी डींग मारते हैं कि भारत-वासी बड़े धार्मिक लोग हैं। क्या हमारा धर्म यही है कि आज तक हम ईश्वर की इच्छा के सामने झुकना नहीं सीखे और हम नित्य उसकी आज्ञा पर रोते-पीटते रहते हैं। सच बात तो यह है कि हम मरने वाले को नहीं रोते-पीटते वरन् ईश्वर की आज्ञा को रोते-पीटते हैं। क्या हमारा धर्म हमें यही सिखाता है?

हमारी सहानुभूति दिखावे की है। ऐसी सहानुभूति से क्या लाभ। हमारा क्रोध भी विलक्षण है। यदि किसी की मृत्यु पर कोई परिचित या सगा-सम्बन्धी न आवे तो हम लोग उससे बिगड़

बैठते हैं। यदि हमारा कोई सगा-सम्बन्धी नौकरी अथवा व्यापार में हमसे बहुत दूर भी हो तो भी उसको अवश्य आना पड़ता है नहीं तो छुटकारा नहीं मिलता। यदि नौकरी वाले को छुट्टी न मिले तो हम लोग कह देते हैं, "यह सब बहाना है।" यदि कोई सम्बन्धी बहुत दूर गया हुआ हो और किसी के मरने के वर्ष-दो-वर्ष बाद आवे, तो आकर पहला काम पल्ला लेना होता है।

यह सब प्रथाएँ हार्दिक रूप से नहीं करते। इन सब से हम तंग भी आये हुए हैं, परन्तु लोकाचार के सामने हम सब विवश हैं। लोकाचार के फँदे हम लोग तोड़ना चाहते हैं परन्तु साहस नहीं। यदि हम में से कुछ साहसी लोग इन निरर्थक एवं हानि-कारक प्रथाओं को छोड़ दें तो अन्य लोग भी उन बातों को धीरे-धीरे छोड़ देंगे। इस तरह धीरे २ सुधार हो जायगा। यदि हम लोग यह आशा करें कि बुरी प्रथाओं को सब लोग एकदम छोड़ दें तो यह असम्भव है। लोकाचार-सम्बन्धी सुधार सदा धीरे २ और देखा-देखी होता है।

दूसरा भाग

हमारे समाज में स्त्री का स्थान

१. दयनीय दशा
२. पति और पत्नी
३. विधवा का जीवन
४. नैतिक बन्धन
५. चरित्र की दो कसौटियां
६. स्त्रियों का नित्य-कर्म
७. सास, ननद और जेठानियां
८. विद्या
९. सामाजिक-सुधार और स्त्रियों का कर्तव्य

पर्दे की क़ैद स्त्री के लिये पुरुष ने नियत की है।
घूंघट और बुर्का स्त्री के लिए पुरुष ने बनाए हैं।
घर की चार-दीवारी में स्त्री को पुरुष ही सीमित रखता है।
पराए लोगों से बात करने से स्त्री को पुरुष ही रोकता है।
यदि स्त्री पुरुष से मुँह छुपाती है तो पुरुष से डरते हुए।
स्त्री को नीच समझे जाने का कारण भी पुरुष ही है।
स्त्री के लिए सब नियम और क़ानून पुरुष ने बनाए हैं।
उत्तराधिकार का अधिकार स्त्री को पुरुष नहीं देता।
स्त्री की दासता और गिरावट की सारी ज़िम्मेदारी पुरुष पर है।

दयनीय दशा

किसी देश की सभ्यता देखने के लिये उस देश की स्त्रियों की दशा देखनी चाहिये। जिस देश की स्त्रियों की दशा खराब है, समझ लो कि वहाँ के लोगों को अभी समझ नहीं आई और उन्होंने अभी सभ्यता नहीं सीखी।

जब से इतिहास की साक्षी मिलती है, एक बात स्पष्ट दिखाई देती है कि कई शताब्दियों से भिन्न-भिन्न देशों में स्त्रियों की स्वतन्त्रता का आंदोलन चलता आ रहा है। किसी देश में इस आंदोलन ने पहले ज़ोर पकड़ा और किसी में बाद में। परन्तु धीरे-धीरे जागे हुए देशों का आस-पास के देशों पर प्रभाव पड़ ही जाता है। अफ़ग़ानिस्तान जैसे कट्टर देशों में भी यह लहर चल पड़ी है। स्त्री-जाति की स्वतन्त्रता के आंदोलन का उद्देश्य केवल यह है कि स्त्री पुरुष के पंजे से मुक्त हो और उसके जीवन में से दासता का अन्त हो जाए। इस उद्देश्य में स्त्री-जाति कहाँ तक सफल हुई है यह हमारे सामने है। भारत में यह आंदोलन अभी थोड़े ही दिनों से प्रारम्भ हुआ है। अभी इसने विशेष बल नहीं पकड़ा है।

हम लोग पहले अधिक सुखी थे या अब—इस बात का निर्णय करना एक कठिन-सा प्रश्न है। किसी शासन-काल में शासक तो

सुखी होता है, परन्तु दास उसी समय तक सुखी रहता है जब तक उसे अपनी दासता का भान नहीं होता। जब उसके मन में यह विचार उत्पन्न हो जाता है कि वह दास है तो जब तक दासता की बेड़ियां नहीं कट जातीं तब तक दास दुखी और असंतुष्ट ही रहता है। शासक के लिये ऐसा व्यक्ति राजद्रोही है क्योंकि वह शासक की सत्ता को और उसके सुख को समाप्त करना चाहता है। परन्तु विद्रोही अपने अधिकार मांगता है और इस बात को मानने से इन्कार करता है कि शासक को उस पर शासन करने का परमात्मा की ओर से अधिकार मिला हुआ है।

ठीक यही परिस्थिति स्त्रियों की है। शताब्दियों से पुरुष का शासन चला आ रहा है। अब वह अपनी सत्ता छिनती देखकर कई प्रकार की चालें चल रहा है। वे कहते हैं कि "स्त्री-जाति स्वतन्त्र होकर कभी सुखी नहीं रह सकती। वह तो पुरुष की छत्र-छाया के नीचे ही सुखी रह सकती है।" परन्तु स्त्री-जाति को स्वतन्त्रता प्राप्त करने की लगन लगी हुई है। वे अब पुरुष के किसी भी फंदे में फँसने के लिये तैयार नहीं हैं।

यह लहर समस्त संसार में चल रही है। न यह हमारे रोके रुक सकती है, न किसी और के प्रयत्न करने से रुक सकती है। इसमें स्त्री के सुख-दुख का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। इस आन्दोलन का क्या परिणाम होगा—यह परमात्मा ही जानता है। परन्तु हम इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि हमारे देश में स्त्री-जाति की दशा बड़ी दयनीय है।

यदि स्त्री पुत्री को जन्म देती है तो हमारे मतानुसार पहाड़ आ गिरता है। पुत्री का जन्म मन्द-भाग्य की निशानी समझी जाती है। उसके जन्म पर न किसी ने आज तक लड्डू बांटे हैं, न किसी ने बधाई दी है। नाम-करण संस्कार भी नाम-मात्र का किया जाता है। लड़की जहां चाहे फिरे, जिस हालत में चाहे रहे, कोई उसकी परवाह नहीं करता। यदि लड़की मर जाए तो दो आंसू गिरा छोड़े, बस छुट्टी हुई। यदि जीवित रही तो 'जो भाग्य में होगा वह ससुराल में ले जायगी।' यदि वह बीमार हो जाती है तो किसी पड़ौसन एवं बुढ़िया ने जो कुछ ऊट-पटांग बता दिया वह कर दिया। यदि वह ठीक हो गई तो खैर, नहीं तो 'परमात्मा की इच्छा।' यदि लड़की भूखी प्यासी है तो किसी को चिन्ता नहीं। यदि वह सर्दी में ठिठुरती है तो किसी को परवाह नहीं।

इस तरह मरती-पड़ती जब लड़की ७–८ वर्ष की हो जाती है तो उसके लिये घर के काम-धंधे करना आवश्यक हो जाता है। छोटे भाइयों को खिलाना-घुमाना, बड़ों को भोजन-पानी आदि देना, आटा गूंधने की कला सीखनी, घर में झाड़ू देनी—इत्यादि अनेकों काम हैं जो उसे करने और सीखने पड़ते हैं। वह यदि छोटे भाई को खिला रही हो और बच्चा रो पड़े तो उसे दो-चार गालियां सुननी पड़ जाती हैं।

थोड़ी और बड़ी होने पर रसोई का सारा काम तथा मकान की सफाई उसके सुपुर्द कर दी जाती है। उसका कतव्य हो जाता

है कि सवेरे मुँह-अन्धेरे उठे, दूध बिलोए, मक्खन निकाले, फिर झाड़ू लगाए, उसके बाद चूल्हे-चौके में मोर्चा लगाए। फिर 'मर्दों' को लस्सी-पानी अथवा चाय दे और उसके बाद छोटे भाई-बहनों को नहला-धुलाकर कपड़े पहनाए। जब सब नहा-धो चुकते हैं तब कहीं जाकर उस बेचारी की नहाने की बारी आती है। आटा गूंधना, बरतन मांजना, रोटी बनाना, सब को खाना खिलाना, सीना-पिरोना, चर्खा कातना, काढ़ना-बुनना, कपड़े धोना, फिर सायंकाल रात का भोजन पकाना, ये सब काम उसकी दिनचर्या में सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त आटा छानना, फटे कपड़े सीना, दाल बीननी, मसाला कूटना आदि काम भी चलते रहते हैं। भोजन पहले घर के मर्द करते हैं, फिर बाल-बच्चे, फिर स्त्रियाँ। तब जाकर कहीं बेचारी लड़की की बारी आती है। खाना खाकर उसे फिर काम पर जुटना पड़ता है—बर्तन मांजने, बिस्तर बिछाने, छोटे बच्चों को सुलाना। वह घर में सब से पहले उठती है और सब से बाद में सोती है।

बेचारी लड़कियों के इस तरह दिन कटते हैं। सारा दिन काम कर-करके थक-हार जाती हैं, उस पर उन्हें खाना भी ठीक तरह नहीं मिलता। दूध तो उन्हें छूना भी नसीब नहीं। न उन्हें अच्छे कपड़े पहनने की इजाजत है। सब कुछ करते हुए भी उन्हें माता-पिता और भाई-भावजों की झिड़कियाँ ही मिलती हैं। यदि वह छोटे भाई को कुछ कह दे तो बस फिर तो बेचारी की शामत ही आ जाती है। उसे बुरी-भली सैंकड़ों बातें सुननी पड़ती

हैं। यदि कोई काम तनिक देर से हो अथवा उसमें तनिक सी कोई गड़बड़ हो जाए तो उस पर फिर गालियों की बौछार ! यदि दुर्भाग्य-वश लड़की कभी दुखी एवं खिन्न होकर आगे से बोल पड़े तो बस फिर तो उसकी खैर नहीं।

यह है हमारा बर्ताव लड़कियों के प्रति ! वे तो वास्तव में इस संसार में नरक भोगती हैं। खाना-पीना उनके लिये हराम ! पहनना उनके लिये हराम ! घूमने-फिरने की उन्हें आज्ञा नहीं। सब की सेवा का पुरस्कार मिलता है झिड़कियों और गालियों के रूप में। उन्हें घर की चार-दीवारी में ही हर समय बन्द रहना पड़ता है। बाहर निकलने की उन्हें आज्ञा नहीं है।

यह दुखी जीवन भोगने के बाद लड़कियाँ ससुराल जाती हैं। उसके ससुराल जाने के समय माँ भी दो आँसू गिरा देती है। वह रोती है—"कौन घर सम्भालेगा, कौन बच्चों को नहलाए-धुलाएगा, कौन उन्हें खिलावेगा। हाय ! इसने तो घर इस तरह सम्भाला हुआ था कि मुझे तो किसी बात की चिन्ता थी ही नहीं। बेचारी सारा दिन काम में लगी रहती थी। बड़े प्रेम से बच्चों को नहलाती-धुलाती थी और खाना खिलाती थी। मैंने तो आज तक किसी को रोते नहीं सुना। आज मुन्ना भी उदास होकर रो रहा है। अच्छा ! लड़कियाँ तो पराया धन होती हैं। उन्हें तो अपने घर जाना ही ठहरा . ...।"

आगे ससुराल में सास इस प्रतीक्षा में होती है कि बहू आकर चौका-चूल्हा सम्भालेगी। पति को उसके मित्रों और 'शुभ-चिन्तकों'

ने पहले से ही यह शिक्षा दी हुई होती है कि "पत्नी को सदा काबू में रखना चाहिये। नहीं तो फिर तंग होना पड़ता है। आते ही रोब डाल देना चाहिये। ऐसा न हो कि वह कहीं काबू से बाहर होजाए।" कोई कहता है, "जब मेरा विवाह हुआ और मेरी धर्मपत्नी घर आई तो उसी दिन मैंने किसी बहाने से अपने नौकर को खूब डांटा और फिर मरम्मत की। बस, मेरी धर्मपत्नी के दिल में मेरे प्रति डर बैठ गया और वह उसी दिन से मेरा रोब मानने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि वह आज तक मेरे सामने नहीं बोली।"

जब लड़की ससुराल पहुँचती है तो पहले-पहल उसकी बड़ी आवभगत होती है। बहुत बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनकर वह सारा दिन पलंग या पीढ़े पर बैठी रहती है। रिश्ते तथा पड़ौस की सब स्त्रियाँ नई बहू को देखने आती हैं। वे उसके गहने-कपड़े देखती हैं, दहेज में आया हुआ उसका सामान देखती हैं। इन सब चीज़ों की वे खूब प्रशंसा करती हैं। साथ ही उसके मां-बाप की भी प्रशंसा होती है। सब स्त्रियाँ उसे 'मुँह दिखाई' के रुपये देती हैं। बहू को अच्छे से अच्छा भोजन कराया जाता है। सास भी उस पर बलि-बलि जाती है। ननदें अपनी भौजाई को देखकर बड़ी प्रसन्न होती हैं। देवर भी उसके साथ हास्य-विनोद करते हैं, उसका घूंघट खोलने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु वह 'भेंट' लिये बिना उनसे घूंघट नहीं खोलती। जेठानियाँ भी उसकी बड़ी आवभगत करती हैं। उसे रसोई के

पास तक नहीं जाने देतीं—कहीं उसके पैरों की मेंहदी न उतर जाए। उसे पिलंग-पीढ़े पर बैठे-बैठे ही खाना खिलाया जाता है। सारांश यह कि नई बहू की हर तरह खातिर की जाती है।

पर 'नई नौ दिन'! फिर उसके साथ भी वही होता है जो औरों के साथ होता आया है। सास की गालियाँ, जेठानियों की झिड़कियाँ, ननदों के व्यंग तथा पति का क्रोध ही उसके भाग्य में लिखे होते हैं। रसोई का सारा काम उसके सुपुर्द हो जाता है। सास, जेठानियाँ और ननदें राज करने लगती हैं। बुहारी-झाड़ू लगाए तो बहू, बर्तन मांजे तो बहू, रोटी बनाए तो बहू, कपड़े धोए तो बहू। जो काम हो सब बहू करे—दूसरे सब लोग उस पर केवल शासन करें। बस वही मायके के जीवन की यहाँ आवृत्ति होती है। न मायके सुख मिला, न ससुराल!

यदि बेचारी को किसी दिन सवेरे उठने में देर हो जाए तो सास उसके पीछे पड़ जाती है। "भला कोई दोपहर तक भी पलंग पर पड़ी रहती है! तेरी मां ने तुझे यही कुछ सिखाया था? सिर पर सूरज चढ़ आया है पर इस फूल कुमारी की अभी आँख ही नहीं खुली।" यदि बेचारी को किसी दिन रात को सास के सोने से पहले नींद आ जाए या किसी काम को छोड़कर वह सो जाए तो बस समझो शामत आ गई—"शाम को ही नवाबज़ादी को नींद आ जाती है। अभी सारे बर्तन मांजने के लिये पड़े हैं। इन्हें क्या तेरी माँ आकर मांजेगी?"

वर्ष में कई अवसर और त्योहार आते हैं जब बहू के मायके

से कुछ न कुछ आना चाहिये—कपड़े, रुपये, फल, मिठाई आदि। यदि किसी अवसर पर यह भेंट न आवे या आशा से कम आवे तो सास उसके अगले-पिछलों को धुन डालती है। मायके वालों को ऐसी उपाधियाँ दी जाती हैं कि सुनने वालों के मन गद्गद हो जाते हैं।

यदि पति को कुछ हो जाए तो बहू की शामत। "अरी कम्बख्त! तूने मेरे बेटे को क्या खिला दिया? जिस दिन से तू आई है वह तो आधा भी नहीं रहा।" इस तरह का व्यवहार होता है बहू के प्रति सास का!

ननदों की तो पूछिये ही ना! वे तो भावजों के साथ वह करती हैं जो और किसी ने न किया हो। मानो उनका कोई पिछले जन्मों का वैर हो। झूठी निन्दा करके उनके विरुद्ध अपने माँ-बाप और भाइयों को भड़काना उनका नित्य का काम है। जब बहू पर क्रोध किया जाता है और उसे धमकाया जाता है तो वे हँसती हैं।

जेठानियां उसे अपना शिकार बनाना अपना परम-कर्तव्य समझती हैं। उसे तंग करने का मानो उनका जन्म-सिद्ध अधिकार है।

सारांश यह कि लड़कियों की वह दुर्गत बनती है कि उसका ठीक वर्णन नहीं हो सकता।

इस सारे अत्याचार और काँड का यह परिणाम होता है कि पुत्र कुछ वर्षों के बाद माँ-बाप से अलग हो जाता है और पति-

पत्नी अलग निर्वाह करने लगते हैं। परन्तु बेचारी को सुख यहाँ भी नसीब नहीं होता। उसे स्वयं ही घर का सारा काम करना पड़ता है—बुहारी झाड़ू लगाए, रोटी बनाए, बच्चों को नहलाए-धुलाए और उनकी हर तरह सम्भाल करे। पति की टहल-सेवा भी करनी हुई। वे सवेरे काम-धंधे पर चले जाते हैं और शाम को आते हैं। शाम को कई बार वे मित्रों के घर चले जाते हैं और घर देर से पहुँचते हैं। अधिकांश स्त्रियां पति के भोजन कर लेने के बाद भोजन करती हैं। इस लए यदि पति देर से घर पहुँचे तो वे भी भूखी बैठी रहती हैं—चाहे रात के १० बज जाएं और भूख से उनकी आंतें कुलबुला रही हों। शाम को वह सब को भोजन खिलाकर बरतन मांजती है, बिस्तर ठीक करती है, रात को बाल बच्चों को दूध पिलाती है और फिर उन्हें सुलाती है। बालकों को यदि नींद न आ रही हो तो उसे भी जागना पड़ता है। वह एक को थपकती है, दूसरे को पीटती है, तीसरे को दूध पिलाती है, परन्तु सोता कोई भी नहीं। जैसे-तैसे उन्हें सुलाकर बेचारी को आधी रात सोना नसीब होता है। सवेरे फिर सब से पहले, मुँह अंधेरे, बेचारी को उठकर नित्य के कार्यों में जुटना पड़ता है।

इस तरह दुखों, क्लेशों और झगड़ों-झंझटों में स्त्री का जीवन व्यतीत होता है।

बड़ी-बूढ़ी होने पर यदि पति का देहान्त उससे पहले हो जाए तो उसका संसार में कोई सहारा नहीं रहता। पति की सारी

जायदाद व सम्पत्ति पुत्र सम्भाल लेते हैं। उस बेचारी को कुछ भी नहीं मिलता। उसे पुत्रों और उनकी पत्नियों के मुंह की ओर देखना पड़ता है। वे यदि चाहें और उस पर तरस खाएं तो उसे दो टुकड़े दे डालते हैं, नहीं तो उसको पेट भरना भी नसीब नहीं होता! यह भी नहीं है कि वह दो सूखी रोटियां भी खाली बैठकर खाना चाहती हो। वह घर के बरतन मांजती है, कपड़े धोती है, बच्चों को खिलाती है, फिर भी उसे पुत्रों और बहुओं की झाड़ें सुननी पड़ती हैं। यदि वह कभी थोड़ी बीमार हो जाए तो एक कोने में उसकी चारपाई डाल दी जाती है। यदि किसी को उस पर दया आ गई तो दवा ला दी, नहीं तो पड़ी रहे। इस तरह विधवा मां बेचारी अपनी घड़ियां गिनती रहती है और यमदूतों की प्रतीक्षा करती रहती है। केवल मृत्यु ही उसे दुखों-क्लेशों और झंझटों से छुटकारा दिलाती है। मृत्यु के उपरांत सब घर वाले, रिश्तेदार आदि एकत्रित होते हैं और उसका अन्तिम-संस्कार कर दिया जाता है। कुछ दिन स्यापा किया जाता हैं, पल्ले किये जाते हैं और आंसू बहाए जाते हैं। उसके बाद बुढ़िया को सब भूल जाते हैं। वह स्त्री जिसने न तो पुत्री के रूप में सुख पाया, न बहू बनकर आनन्द प्राप्त किया, न घर की मालकिन बनकर सुख भोगा, न जिसे 'माजी' की पदवी पाकर पेट भरकर रोटी मिली, इस प्रकार संसार से कूच कर जाती है और, दूसरे शब्दों में, अपने दुख-पूर्ण जीवन से छूट जाती है।

यह है हमारे यहाँ स्त्री-जाति की साधारण तौर पर दशा।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज भी ९० प्रतिशत घरों में स्त्रियों की यही दशा है। हमारी बच्चियाँ, बहनें, बहुएँ और माताएँ यही नरक का जीवन भोग रही हैं। ये बेचारी गउओं की भांति चुपचाप इन अत्याचारों और अन्यायों को सह रही हैं। कुछेक इस नारकीय जीवन से तंग आकर आत्म-हत्या कर लेती हैं। कितनों का हर घड़ी सास, ननद अथवा पति से झगड़ा फ़िसाद होता रहता है। कई स्त्रियाँ घरों से निकल भागती हैं। सारांश यह कि हमारा गृहस्थ जीवन दुःखों का जीवन बन गया है। हमने अपने घरेलू जीवन को नरक बनाया हुआ है। पता नहीं आगे कोई नरक है या नहीं, परन्तु हमारे गृहस्थ जीवन की अपेक्षा नरक में भी भला और कौन-सी यातनाएँ होंगी ?

इसका एक परिणाम यह हो रहा है कि हमारे यहाँ की पढ़ी-लिखी लड़कियाँ विवाह को घृणा की दृष्टि से देखती हैं। जिनका वश चलता है वे विवाह नहीं करतीं, बल्कि नौकरी आदि करके स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती हैं। और गृहस्थ-जीवन के क्लेशों से अबराकर आजकल माँ बाप भी अपनी लड़की के लिये वह घर ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं जहाँ न सास हो, न ननद, ताकि उनकी लड़की ही घर की मालकिन बने। या वे नौकरी वाला लड़का देखते हैं कि न वह घर में रहे और न उनकी लड़की क्लेशमय जीवन व्यतीत करने के लिये विवश हो। पति भी आजकल यही प्रयत्न करते हैं कि उनकी पत्नी अपनी सास, जेठानियों और ननदों से दूर ही रहे। इसलिये या तो वे विवाह होते ही मां-बाप से अलग

हो जाते हैं, या विवाह के बाद बाप से अलग कहीं और जाकर काम-धंधा कर लेते हैं।

स्त्रियों के साथ हमारे सामाजिक दुर्व्यवहार के क्या परिणाम निकलते हैं ? पुत्रों की मां-बाप के साथ नहीं बनती, बहुओं की सास, जेठानियों और ननदों के साथ नहीं बनती, और भाई-बहनों की लड़ाई हो जाती है अर्थात् एक ही घर के प्राणियों में आपस में महाभारत छिड़ जाती है। केवल दिखावे का प्रेम और शिष्टाचार रह गया है। अन्दर से हम अपने किसी सगे को देखकर खुश नहीं होते। गृहस्थ-जीवन के इन्हीं झगड़ों और क्लेशों के कारण हमारे मन अपने सगों से खट्टे हो जाते हैं। हमारा सामाजिक और कौटुम्बिक संगठन छिन्न-भिन्न हो चुका है। हम जिन सामाजिक और कौटुम्बिक कर्तव्यों का पालन करते भी हैं वह केवल रीति-रिवाजों से बंधे हुए करते हैं, हमारी उनके प्रति कोई श्रद्धा या अच्छी भावना नहीं है।

पति और पत्नी

पति और पत्नी का जीवन भी एक विलक्षण जीवन होता है। ललाट के लेखों ने, या परमात्मा की इच्छा ने, या ग्रहों वा नक्षत्रों ने, या प्रारब्ध ने, या मां-बाप की कृपा ने, या यूँही, (कुछ भी कह लीजिये), दोनों का जीवन एक घर में मिला दिया है। दोनों के दुख-सुख एक हो गये हैं। दोनों ने अपना बाल्यकाल अलग-अलग, एक-दूसरे से अपरिचित, अनभिज्ञ, रहकर बिताया, परन्तु जब जीवन की दूसरी पैड़ी पर चढ़ने लगे तो जीवन ने दोनों को एक-दूसरे के साथ मिला दिया। कितने चाव और आनन्दोत्सव के साथ दोनों को मिलाया जाता है, दोनों के मां-बाप गद्‌गद होते हैं, सगे-सम्बन्धी, दोस्त, मिलने वाले, पड़ौसी, सब बधाइयाँ देते हैं। लड़के और लड़की की कितनी क़द्र की जाती है, ख़ातिरें की जाती हैं। परन्तु थोड़े दिनों के बाद वही गृहस्थी के झंझट, सगे-संबन्धियों के साथ झगड़े और मन-मुटाव, बालकों की मुसीबत, पेट के धंधे के कष्ट, दुनियादारी.....जीवन में एक भी सुख प्राप्त नहीं होता। वाह रे मनुष्य जीवन! दुखों का घर, घरों का दुख; माया का मोह, मोह की माया.....सुख कहीं भी नहीं। न घर में सुख, न बाहर सुख; न मायके में सुख, न ससुराल में सुख; न देश में सुख, न परदेश में सुख..... न बालक सुखी, न युवक सुखी, न

बूढ़े सुखी ! केवल एक-आध क्षण खुशी का मिलता है—जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, फिर सब खुशी लुप्त हो जाती है।

हम सदा कहते हैं कि पति और पत्नी का मिलन एक आध्यात्मिक मिलन है, पत्नी पति की अर्धाङ्गिनी है। यदि पति राजा है तो पत्नी उसकी मंत्री है। दोनों भव-सागर से पार होने के लिये एक नाव के समान हैं। .. परन्तु हम कर क्या रहे हैं ? क्या पति और पत्नी आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं, क्या दोनों प्रेम के एक तार में पिरोये हुए हैं ? क्या वे 'एक प्राण, दो शरीर' हैं ? पति को हम विवाह के समय शिक्षा देते हैं कि अपनी पत्नी को अच्छी तरह वश में रखना। इसी में तुम्हारी भलाई है। पत्नी को हम कहते हैं कि 'पति देव' की पूजा करनी ही उसका धर्म है। परन्तु क्या 'रोब' और 'सेवा' दोनों एक साथ निभ सकते हैं ? जहाँ रोब है, वहाँ प्रेम कैसे रह सकता ? हमारा आदर्श कुछ और है, परन्तु हम कर कुछ और रहे हैं। हमारे यहाँ पत्नी और पति का साथ घर की देहरी तक ही सीमित है। घर से बाहर दोनों का अलग-अलग क्षेत्र है, अलग-अलग दिलचस्पियाँ हैं, अलग-अलग मनोरंजन हैं।

नया-नया विवाह होता है तभी चाव रहते हैं। कुछ दिन व्यतीत होने पर जीवन की सरसता और आनन्द उड़न्छू हो जाते हैं ! सगे-सम्बंधियों को जैसे उनसे अब कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहा। अब पति और पत्नी को अपनी-अपनी आप निबेड़नी है, दोनों ने अपना जीवन आप काटना है, दोनों ने जैसे-तैसे एक

दूसरे के साथ निबाह करना है। दोनों एक दूसरे से रूठते भी हैं, परन्तु मनाना भी एक दूसरे को स्वयं ही है। दोनों ने यदि पार होना है तो एक बेड़े में और डूबना है तो एक बेड़े में। परन्तु दोनों के काम अलग-अलग होते हैं, कर्तव्य अलग-अलग होते हैं और रुचियाँ तथा बुद्धि भी विभिन्न होती हैं। फिर दोनों का निबाह किस तरह हो ? पति-देव सवेरे ही खा-पीकर अपने काम-धंधे पर चले जाते हैं, पत्नी सारा दिन घर में बन्द रहती है। पति रात को सोने के समय घर को आते हैं और खाना खा-पीकर सो जाते हैं। पत्नी को यह पता नहीं होता कि उसके पति सारा दिन क्या करते रहते हैं, न ही पति को पता रहता है कि उसकी पत्नी दिन भर क्या करती है। पत्नी को इतना ही पता होता है कि उसके घर वाले किसी दफ्तर में बाबू हैं, या दुकानदार हैं, या डाक्टर हैं या वकील, मास्टर आदि। बस, उसे इतना ही पता होता है। इससे अधिक जानकारी प्राप्त करने की उसे आवश्यकता ही नहीं होती। उधर पति-देव भी इतना ही जानते हैं कि उसकी घर-वाली घर की देख-भाल करती है, खाना बनाती है और बच्चों का पालन-पोषण करती है. पत्नी को यह पता नहीं होता कि उसके पति को सारा दिन क्या-क्या करना पड़ता है, किस-किस तरह करना पड़ता है, किन-किन एवं कैसे-कैसे लोगों से वास्ता पड़ता है, और किस तरह उनका दिन व्यतीत होता है। पति को यह ज्ञान नहीं होता कि उसकी पत्नी किस तरह बच्चों से निपटती है, सारा दिन किस तरह काटती है, उसका मन और मस्तिष्क क्या

सोचता और विचारता रहता है और उसके विचार कहाँ-कहाँ दौड़ते रहते हैं। दोनों को एक दूसरे के विचारों और रुचियों की कोई ख़बर नहीं। प्रायः दोनों की मानसिक अवस्था में दिन-रात का अन्तर होता है। दोनों अपने-अपने विचार एक-दूसरे के सामने नहीं रख सकते क्योंकि दोनों में भारी मानसिक अन्तर है, दोनों का मानसिक स्तर भिन्न है। न ही दोनों के मनोरञ्जन एक हैं और न दोनों की रुचियाँ एक हैं। पत्नी को उन बातों का पता तक नहीं जो पति के मन में हैं। यह विस्तृत जगत्—देश-देशान्तर—राजनीति, अर्थ-शास्त्र आदि अनेकों विषय हैं जिनमें पति दिलचस्पी लेता है, परन्तु उन विषयों पर वह पत्नी से बात नहीं कर सकता क्योंकि उस बेचारी को उनका क्या पता? उसे उनका ज्ञान ही नहीं है तो वह उनमें क्या दिलचस्पी ले? यदि पति कुछ सोच या पढ़ रहा हो और पत्नी पूछ बैठे कि "क्या सोच रहे हो?" या "क्या पढ़ रहे हो?" तो पति केवल यही उत्तर देता है—"कुछ नहीं।" यह सुनकर पत्नी रुष्ट हो जाती है। वह समझती है कि उसके पति-देव उससे बातें छिपाते हैं। परन्तु वास्तव में पति इसलिये बातचीत नहीं करता कि वह बेचारी उन बातों को समझ नहीं सकती। पत्नी कई बार कई तरह की शंकाएँ मन में पैदा कर लेती है। यह संदेह करने का स्वभाव नित्य-प्रति दृढ़ होता जाता है और धीरे-धीरे बात-बात में पत्नी पति पर संदेह करने लग जाती है। यह है दोनों के मानसिक-स्तर में अन्तर होने का परिणाम! फिर इसका और दुष्परिणाम

यह होता है कि दोनों में मन-मुटाव होने लगता है, झगड़े शुरू हो जाते हैं और कुछ दिनों के बाद उनका गृहस्थ-जीवन नरक बन जाता है।

पति-पत्नी में और भी कई कारणों से झगड़े होते रहते हैं। स्त्री अपने मायके और सगों की हिमायत करती है, उनकी प्रशंसा करती है। यह बात ससुराल वालों को सहन नहीं होती। वे व्यंग करते रहते हैं—"इसे तो अपने ही भाई-बहन, भावजें, भानजे, भतीजे अच्छे लगते हैं। देवरों, जेठ के बच्चों, ननदों के बच्चों आदि को तो यह देखना भी पसन्द नहीं करती।" इस तरह झगड़े बढ़ते चले जाते हैं। यदि पति अपने सगों को कुछ देने का साहस करे तो पत्नी उसके सिर हो जाती है। वह कहती है—"सारा घर उन्हें ही दे डालोगे क्या? उन्होंने हमें कौन-सी जागीर दे देनी है। कभी उन्होंने हमारे बेटे की हथेली पर भी चार पैसे रखे हैं? फिर क्यों हम उनकी खातिरें करें?" पत्नी इस प्रकार के उपालम्भ नित्य प्रति देती रहती है। कई बार तो वह पति के सम्बंधियों और कुटुम्बियों को भी उपालम्भ देने से नहीं चूकती। इस तरह पति-पत्नी दोनों से उनके सगे-सम्बंधी नाराज हो जाते हैं।

यह सब हो क्यों न? हम लड़कियों को इस योग्य ही नहीं बनाते कि वे गृहस्थ के छोटे से दायरे के बाहर कुछ सोच सकें या उनका मस्तिष्क किसी और दिशा में भी लग सके। उनका मस्तिष्क सारा दिन यही सोचता रहता है कि अमुक रिश्तेदार ने यह कहा

था और यह किया था। उनकी दृष्टि अपने कुटुम्ब या सम्बन्धियों के क्षेत्र से परे जाती ही नहीं। जब वे छोटी होती हैं तो हम उन्हें कोई शिक्षा नहीं देते। उन्हें तो केवल घर का काम-काज और रिश्तेदारों के सम्बन्ध में चर्चा करना ही सिखाया जाता है। संसार का उन्हें और कोई ज्ञान नहीं होता। इसीलिये आजकल के लड़के पढ़ी-लिखी लड़कियां चाहते हैं ताकि दोनों एक-दूसरे को समझ सकें, दोनों एक-दूसरे की रुचियों और मनोरंजनों में साथ दे सकें, और दोनों एक-दूसरे के दुख सुख में वास्तविक रूप से साझीदार हो सकें। पढ़ी-लिखी लड़कियां अपने मस्तिष्क को किसी न किसी अच्छे काम में लगाए रखेंगी—उन्हें सारा दिन सगे-सम्बन्धियों की बातें ही नहीं सूझती रहेंगी। यदि हम पढ़ने-लिखने का चाव उनके मन में डाल दें तो वे स्वयं ही निरथक लड़ाई-झगड़े छोड़ देंगी। खाली बैठे २ मनुष्य को ऊट-पटांग बातें सूझती हैं। इसी प्रकार जब स्त्री के मस्तिष्क को कोई और काम न हो तो वह अवश्य ही पति से, बाल-बच्चों से और सगे-सम्बन्धियों से लड़ेगी। यदि उनके मस्तिष्क को किसी और दिशा में लगा दिया जाए तो अन्य कई तरह के लाभ के साथ २ यह भी लाभ होगा कि स्त्रियां कम झगड़ालू होंगी और फलस्वरूप पति-पत्नी और सारी गृहस्थी का जीवन सुखमय होगा।

आजकल हमारी स्त्रियों को घर के काम-काज के अतिरिक्त यदि और कोई काम है तो वह है बातें बनाने का। स्त्रियां बड़ी बातूनी होती हैं। जहां दो स्त्रियां इकट्ठी हुईं (और स्त्रियां अकेली तो बैठ

ही नहीं सकतीं) वहां वे बातों में ऐसी जुटती हैं कि जब तक कोई बहुत आवश्यक कार्य न आ पड़े वे बातें करती ही रहेंगी। और जहां संयोग और ईश्वर की कृपा से ४-५ स्त्रियां एकत्रित हो जाएं, वहां तो काँव-काँव होती ही रहती है। फिर मज़ा यह है कि उनकी बातें धीरे तो हो ही नहीं सकतीं। जब तक वे ज़ोर २ से न बोलें उन्हें आनन्द ही नहीं आता। सभाओं, मन्दिरों, गुरुद्वारों, सत्संगों आदि में जिधर स्त्रियां बैठी हों उधर शोर एक क्षण के लिये भी बन्द नहीं होता। कोई भी, और कैसा भी, अवसर क्यों न हो वे एक-दूसरे के साथ अपनी ही सभा प्रारम्भ कर देती हैं—उनका अपना ही व्याख्यान प्रारम्भ हो जाता है। एक-दूसरी के कपड़ों, ज़ेवरों की निन्दा-स्तुति प्रारम्भ कर देती हैं। वे एक-दूसरी के ज़ेवरों की गढ़ाई-बनाई के दाम पूछेंगी, कपड़ा किस दुकान से कितने में लिया—यह पूछेंगी। यदि कोई स्त्री चुप बैठी हो तो उसे कहेंगी, "बड़ी मिज़ाज वाली है।" चुप होकर बैठना हमारी स्त्रियों के नियमों के विरुद्ध है।

जब स्त्रियां अपनी सहेलियों से अथवा गली-मुहल्ले में अपनी मिलने वाली महिलाओं से बात-चीत करती हैं तो अपने दुख-सुखों का दफ्तर खोल देती हैं। यहां तक कि घर की कहने-न-कहने वाली सभी बातें कह डालती हैं। जब तक वे सब बातें न कह डालें उन्हें चैन ही नहीं पड़ता। उनके पेट में कोई बात पच ही नहीं सकती। पति की शिकायतें तक सहेलियों के सामने कर डालती हैं।

बेचारी बातों के अतिरिक्त और करें भी क्या ? घर के झंझटों

और क्लेशों से तंग आई हुई स्त्रियों के पास मन बहलाने के लिये गप-शप के अतिरिक्त और साधन है ही क्या ? हमने उन्हें और सिखाया ही क्या होता है ? इसलिये जब भी उनके पास अवकाश का समय होता है वे उसे बातें करके बिता देती हैं । हमने उन्हें न पढ़ाया न लिखाया । वास्तव में हमने उन्हें विद्या से पूरी तरह वंचित रखा है । तो फिर उन्हें अपने आप ही निरर्थक और निकम्मी बातों में समय व्यतीत करना हुआ । यदि उन्हें पढ़ने-लिखने का तथा किसी कला-कौशल का शौक़ हो तो अपने आप ही उनका मन उधर लगे । परन्तु यह शौक़ तभी हो सकता है जब हम उन्हें उचित प्रकार की शिक्षा दें ।

विधवा का जीवन

चाहे चढ़ती जवानी हो, चाहे उतरती अवस्था, स्त्री के लिये पति की मृत्यु एक असह्य चोट है। पति की मृत्यु होते ही सारा नक्शा ही बदल जाता है। संसार कुछ और ही और दिखाई देने लगता है। सगे-सम्बन्धी कुछ और ही तरह देखने लगते हैं। सामाजिक क़ानून और रीति-रिवाज ऐसे बनाए गए हैं कि स्त्री-जाति के साथ बड़ा अन्याय किया गया प्रतीत होता है। पति के मरने पर स्त्री का सांसारिक-जीवन समाप्त हुआ समझा जाता है। पहले पत्नियाँ अपने पतियों के साथ 'सती' हो जाती थीं। सती होने पर उन्हें स्वर्ग मिलने का विश्वास दिलाया जाता था। आज-कल सती की प्रथा बन्द है। विधवा को जीवित रहना पड़ता है। परन्तु उसका जीवन इतना दुखदायक है कि देखकर पत्थर भी पिघल जाएं। उनके जीवन को देखकर हम स्त्री की सहन-शक्ति और धैर्य की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। परन्तु साथ ही आश्चर्य होता है कि इतने घोर अत्याचार सहते हुए भी वह आज से बहुत पहले क्यों न विद्रोह का झंडा लेकर खड़ी हो गई! आज भारत में भी विधवा-विवाह की लहर चल पड़ी है, परन्तु जिस चाल से हम चल रहे हैं उससे जनता की विचार-धारा बदलने में कई शताब्दियाँ लग जाएंगी। पढ़े-लिखे लोगों की थोड़ी-सी संख्या

आम तौर पर विधवा-विवाह के पक्ष में है, शेष अधिकांश जनता इस प्रथा को घृणा की दृष्टि से देखती है और इस काम का जहाँ तक हो सके विरोध करती है। इसका परिणाम यह है कि हमारे देश में हज़ारों लाखों युवा-अवस्था की स्त्रियाँ वैधव्य का नारकीय-जीवन व्यतीत करने के लिये विवश हैं।

यदि विधवाओं का जीवन सुखी होता और उन्हें घर वालों की सहानुभूति उपलब्ध होती तो कोई आपत्ति न थी। परन्तु जो बर्ताव हम लोग विधवाओं के साथ करते हैं वह अत्यन्त घृणा के योग्य और कमीना है। लड़की का विवाह हो जाने के बाद उसके माँ-बाप का उस पर कोई अधिकार नहीं रहता। वे उसे वापिस अपने घर में नहीं ले जा सकते। इसलिये बेचारी विधवा को दु खम्-सुखम् अपना शेष जीवन ससुराल में व्यतीत करना पड़ता है।

सास विधवा बहू को बहुत मनहूस समझती है। वह समझती है कि उसके पुत्र को बहू ने ही 'खाया' है। जब उसे बहू पर क्रोध आता है तो वह उस पर यही कहकर बाण मारती है। इस बात का बेचारी निर्दोष दुखिया पर क्या प्रभाव होता है यह वही जानती है, परन्तु बेचारी सी नहीं कर सकती। वह तो 'पिछले कर्मों का फल' भोग रही है। दांतों के नीचे जीभ दबाकर दिन काटना विधवा के भाग्य में लिखा है, यदि वह आह करती है तो यह उसकी 'गुस्ताख़ी' है और जी तोड़कर सेवा करनी उसके जीवन का आदर्श है। कपड़े धोने, बर्तन मांजने, झाड़ू लगानी - ये सब काम उसके सुपुर्द कर दिये जाते हैं। नियंत्रण भी विधवा पर

बड़े कठोर लगाए जाते हैं। रंगीन कपड़े भी पहनना उसके लिये वर्जित है, आभूषणों का तो वह नाम भी नहीं ले सकती, बहुत सफ़ेद कपड़े भी उसके लिये ठीक नहीं समझे जाते। ज़ोर-ज़ोर से हँसना निर्लज्जता की निशानी है। कम बोलना और ईश्वर की भक्ति करनी—ये विधवा के गुण समझे जाते हैं। उसकी सारी आयु शोक में व्यतीत होनी चाहिए। आनन्द और प्रसन्नता उसके लिये नहीं हैं। बूढ़ी होकर भी वह जिसके द्वार पर रहे, उसके घर का काम-काज नौकरानियों की भांति उसे करना चाहिये। यदि किसी रिश्तेदार ने सेवा करानी होगी तो वह बेचारी विधवा को ही घसीट कर ले जाएगा। विधवा ही एक ऐसी नौकरानी है जो केवल रोटी-कपड़े पर सारा दिन परिश्रम करती है। केवल काम ही उससे नौकरों वाला लिया जाता हो सो बात नहीं है। उससे व्यवहार भी नौकरों जैसा ही किया जाता है।

यदि किसी विधवा के पास कोई बाल-बच्चा हो तो उसकी स्थिति और भी शोचनीय हो जाती है। बच्चों के लिए अनेकों चीज़ों—खिलौनों, कपड़ों, पुस्तकों—आदि की मांग करना स्वाभाविक है। परन्तु बेचारी विधवा ये सब मांगें कहाँ से पूरी करे। जब उसके बच्चे किसी चीज़ के लिये रूठते हैं और हठ करते हैं तो विधवा मां अपनी छाती पर मुक्का मारकर रह जाती है। उसके बच्चे अपने चाचाओं, ताउओं, दादा-दादी, बुआ आदि के तरस पर रहते हैं। यदि वे किसी बच्चे को कुछ दिलवादें या थोड़ी-बहुत उसकी देख-भाल कर दें तो बच्चा उनसे प्यार करने लगता है।

परन्तु विधवा के बाल-बच्चों का हाल आमतौर पर बुरा ही होता है। वे बेचारे दयनीय दशा में ही पलते हैं। यदि कभी कोई बच्चा किसी बात के लिये अधिक हठ कर बैठे तो विधवा खिन्न और क्रुद्ध होकर उसे पीट डालती है। बेचारे बच्चे को क्या पता कि उसका हठ करने का अधिकार छिन चुका है। चारों ओर से निराश और दुखी होकर विधवा रोकर अपने मन का बोझ हल्का करना चाहती है। परन्तु रोना भी उसके लिये वर्जित है। विधवा स्त्री को कोई भी अपने द्वार पर रोने नहीं देता। इसे अशुभ समझा जाता है। यह दूसरी बात है कि वह चोरी-छुप्पे किसी कोने में दुबक कर चुपके-चुपके सिसकियां भरले। परन्तु यदि किसी ने उसे रोते देख लिया तो बस समझलो कि उसकी शामत आ गई। इसलिये वह दिल पर पत्थर रखकर जीवन के दिन काटती है। विधवा के बच्चों से अधिक दुर्दशा संसार में और किसी की नहीं होती। उसको कोई नहीं पूछता, कोई उसकी परवाह नहीं करता, कोई उसे प्यार नहीं करता।

यहां तक ही बस नहीं। विधवा पर और भी कई तरह से अन्याय और अत्याचार होते हैं। यदि उसका पति जीते जी बीमा आदि कराके अपनी पत्नी के निर्वाह के लिये कुछ प्रबन्ध कर भी गया हो तो भी विधवा स्त्री को बड़े कष्ट सहने पड़ते हैं। पहले तो वह रुपया मिलना ही दुष्कर होता है, क्योंकि बिना ससुर, जेठ आदि की सहायता के रुपया नहीं मिल सकता। यदि मिल भी गया तो जिनके पास उसे रहना पड़े वे रुपये को हथिया लेते हैं।

या उसे कहीं 'जमा' करा देते हैं कि जब विधवा को आवश्यकता पड़ेगी, निकलवा देंगे। उसके पास रुपया इसलिये नहीं छोड़ा जाता कि कहीं वह उसे बर्बाद न कर दे। इस तरह हम बेचारी को बातों में फुसलाकर ठगते हैं। तात्पर्य हमारा वास्तव में यह होता है कि जब वह मर-खप जाए तो वह पैसा भी हमारे हाथ आ जाए। उसके जीते जी भी हम उसके रुपये का प्रयोग निःसंकोच अपने काम-धन्धे में करते हैं। विधवा स्त्री भी क्या करे ? उसे इन बातों की समझ तो होती नहीं, इसलिये उसे किसी न किसी का विश्वास करना पड़ता है और किसी न किसी की सहायता लेनी पड़ती है। परन्तु माया का लोभ बुरा होता है। भले-मानस भी धोखा देने से नहीं चूकते। भाई-बन्धु भी विधवा बहन का रुपया हज़म करते देखे सुने गए हैं।

यदि वह किसी ऐसे सम्बन्धी के यहाँ जाकर रहने लगे जो ससुराल से कुछ अलग-सा हो, परन्तु जिसका उसे विश्वास हो तो लोग सैंकड़ों आक्षेप करने लग जाते हैं। विधवा बेचारी का छुटकारा किसी तरह भी नहीं हो पाता। वह चक्की के दोनों पाटों के बीच पिसकर भी 'सी' न करे तभी दुनिया उसे खड़ी होने देती है। तभी तो बेचारी के साथ इतनी बुरी की जाती है कि कई विधवाएँ तंग आकर आत्म-हत्या कर डालती हैं। तभी उनके कष्टों का अन्त होता है।

ऐसे दुखी जीवन से द्रवित होकर आजकल कुछ माँ-बाप अपनी जवान विधवा लड़कियों को पढ़ा-लिखाकर किसी स्कूल में

अध्यापिका करा देते हैं। इस तरह वह बेचारी अपने पाँव पर खड़ी होने के योग्य हो जाती है और किसी के ऊपर आश्रित नहीं रहती। परन्तु यह काम सारी विधवाएँ नहीं कर सकतीं, साहसपूर्ण और समझदार गिनी-चुनी स्त्रियाँ ही इतनी दलेरी दिखाती हैं। शेष विधवा स्त्रियों को वही जीवन व्यतीत करना पड़ता है जिसका ऊपर वर्णन किया गया है।

उधर अब अध्यापिका बनने में भी विधवाओं को कठिनाई अनुभव होने लगी है। कारण यह कि इस क्षेत्र में भी अब वे लड़कियाँ अधिक आने लगी हैं जो प्रारम्भ से पढ़कर बी. ए., एम. ए. की परीक्षाएँ पास कर लेती हैं। उनकी अपेक्षा विधवाओं को, जो बेचारी थोड़ी ही पढ़ सकती हैं, कौन पूछता है? उन्हें अधिक पढ़ाना सम्भव नहीं होता। परिणाम यह है कि अब इस तरह भी विधवाओं की कठिनाई हल नहीं होती।

इन दुखों का केवल एक ही इलाज है—विधवा-विवाह। और जितने इलाज हम करेंगे वे सब अस्थायी और अधूरे होंगे। हम विधवाओं के संकटों का और किसी तरह निवारण नहीं कर सकते। धर्मपत्नी के मरने पर यदि पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है तो क्या कारण है कि विधवा दूसरा विवाह नहीं कर सकती। यह बड़ा भारी अन्याय है। हम कभी यह आशा नहीं कर सकते कि सारी विधवाएं विरक्ति और भक्ति का जीवन व्यतीत करें और आँख उठाकर भी किसी ओर न देखें। यह आशा रखनी मनुष्य के नैसर्गिक स्वभाव की ओर से आँख बन्द करने के बराबर है।

नैतिक बन्धन

स्त्रियों को हमने कई प्रकार के बन्धनों में जकड़ा हुआ है। परन्तु सब से अधिक कड़ी जंजीरें हमारे नैतिक बन्धन हैं। बाल्यकाल समाप्त होते ही लड़कियों को हम लोग घर की चार-दीवारी में क़ैद करना शुरू कर देते हैं। माँ-बाप के घर की क़ैद भोगने के बाद, उसी हालत में, हम उसे उसकी ससुराल भेज देते हैं, परन्तु यह भी एक जेल से दूसरी जेल में बदलने के समान होता है। जैसे बन्धन मायके में वैसे ही ससुराल में, अन्तर केवल इतना ही है कि वहाँ पति और ससुर आदि की क़ैद में होती है और यहाँ माँ-बाप और भाइयों की कैद में। वहाँ 'बहू' और 'पत्नी' के रूप में बन्धन होते हैं और यहाँ 'लड़की' के रूप में। स्त्रियों की क़ैद वास्तविक अर्थ में उम्र-क़ैद होती है। उनका छुटकारा मरने पर ही होता है।

जो काम-काज उन्हें अपनी जेलों में करने पड़ते हैं उनका वर्णन अन्य स्थान पर किया जा चुका है। हाँ, उन्हें आयु के अनुसार कुछ सहूलियतें तथा रिआयतें अवश्य मिलती रहती हैं। जिस तरह नाबालिग क़ैदियों से कठोर परिश्रम के काम कम कराए जाते हैं उसी प्रकार छोटी लड़कियों की स्थिति है। जिस प्रकार पुराने क़ैदियों को नए क़ैदियों का जमादार बना दिया जाता है तथा उन

पर पाबन्दियाँ कुछ कम कर दी जाती हैं, उसी प्रकार बड़ी आयु की स्त्रियों को नई बहुओं पर शासन करने के अधिकार प्राप्त होते हैं और उन पर रोक-टोक भी कम हो जाती है।

हमारे विचार भी बड़े विचित्र हैं। हम समझते हैं कि स्त्रियाँ स्वभाव से ही कुछ ऐसी होती हैं कि तनिक-सा भी अवसर मिलने पर वे फिसल पड़ती हैं। इसलिये जब से लड़कियाँ बाल्यकाल पार करती हैं तभी से हम उनकी बड़ी कठोर देख-रेख प्रारम्भ कर देते हैं। हमें डर लगा रहता है कि कहीं वे 'बिगड़' न जाएं। छोटी-छोटी लड़कियाँ गली-मुहल्ले में खेलती-फिरती हैं, किन्तु वे भी अपनी जितनी आयु की लड़कियों के साथ खेलें तभी ठीक है। अपनी आयु के लड़कों के साथ उनका खेलना पसन्द नहीं किया जाता। जब लड़कियाँ १२-१४ वर्ष की हो जाती हैं तो उनका घरों से निकलना बन्द कर दिया जाता है। अन्दर-बाहर जाने-आने की उन्हें स्वतन्त्रता नहीं होती। पुरुषों के सामने आना उनके लिये पूरी तरह वर्जित है—यहाँ तक कि वे अपने पिता से भी खुलकर बात नहीं करतीं। शाम होने पर वे अपनी जितनी आयु वाली लड़कियों से या गली-मुहल्ले की स्त्रियों से थोड़ी देर के लिये मिल आती हैं, बस उनके लिये इतनी ही स्वतन्त्रता है। घर के अन्दर भी उन्हें पूरी स्वतन्त्रता नहीं मिलती। जवान भाइयों के साथ भी वे खुलकर बातें नहीं कर सकतीं। जवान भाई और जवान बहिन का अकेले में बातें करना बहुत बुरा समझा जाता है।

ये नियम कुँआरी लड़कियों के लिये हैं। विवाहित लड़कियों

के लिये और ही नियम हैं। नव-विवाहित लड़कियाँ तो अधिक बोलती ही नहीं हैं। उन्हें सब पुरुषों के सामने घूँघट निकालना पड़ता है। पति से भी वे किसी और के सामने खुले तौर पर बातचीत नहीं कर सकतीं। ये बन्दिशें धीरे-धीरे थोड़ी-थोड़ी ढीली होती जाती हैं। देवरों के साथ हँसी-मज़ाक़ करना बुरा नहीं समझा जाता। साथ ही थोड़े दिनों के बाद पति के साथ बात करने में भी संकोच कम होता जाता है। थोड़ी और बड़ी होकर और अधिक स्वतन्त्रता मिल जाती है। तब वे गली-मुहल्ले में आए हुए फेरी-वालों के साथ खुलकर बातें कर सकती हैं। 'पराये मर्दों' के साथ बात करना हम स्त्रियों के लिये बहुत ही बुरी और घृणा के योग्य बात समझते हैं। हाँ, बड़ी आयु की स्त्रियों को यदि आवश्यकता पड़ जाए तो वे 'पराये मर्दों' से भले ही कुछ बातचीत कर सकती हैं। परन्तु इस मामले में बड़े और छोटे घरानों के नियमों में अन्तर है। 'बड़े' घरों की स्त्रियाँ किसी भी अवस्था में पराये आदमियों से बातचीत नहीं करेंगी। परन्तु साधारण घरानों की स्त्रियाँ आवश्यकता पड़ने पर इस नियम को तोड़ देती हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इन नैतिक बन्धनों ने हमें बिल्कुल पवित्र और शुद्ध रखा है? क्या हमारे अन्दर इनके कारण कुछ कमज़ोरियाँ एवं बुराइयां उत्पन्न नहीं हुई हैं? समय के चक्र ने हमें चारों ओर से घेर लिया है और हमारे कठोर नैतिक बंधन भी टूट रहे हैं। पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव बड़ी तेज़ी से हमारे सामाजिक और घरेलू जीवन पर पड़ रहा है। हमें अब यह

देखना चाहिये कि ऐसी परिस्थिति में क्या करना उत्तम होगा। हमें सोचना होगा कि क्या वर्तमान युग यह चाहता है कि बन्दियों की कड़ियाँ और भी दृढ़ कर दी जाएं या वह यह चाहता है कि उन्हें उतार दिया जाए। आज के युग की यह मांग है कि प्रत्येक व्यक्ति को वह स्वतन्त्रता मिल जानी चाहिये जिससे सर्वलोक का हित हो। किसी सभ्यता का अन्धा अनुकरण ठीक नहीं है, परन्तु दूसरे लोगों से अच्छी बातें और सद्गुण ग्रहण करना सभी के लिये कल्याणकारी होगा। संसार के बहुत से विद्वानों ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में बड़ा गहन अध्ययन और छानबीन की है। हमें इस मनोवैज्ञानिक ज्ञान के प्रकाश में सोचना चाहिये कि हमारा मार्ग किधर है। हमारे नियम और बन्धन पिछले युग के लिये भले ही लाभदायक रहे हों किन्तु आज की परिस्थिति में तो ये निःसन्देह कष्टदायक और हानिकारक हैं। आजकल सारे संसार में चारों ओर स्त्रियां स्वतन्त्र हो रही हैं। फिर भला वे यहां आचार-विचार सम्बन्धी बन्धनों को कहां सहन करेंगी? उनका आचरण 'सुधारने' के लिये हमने जो बन्धन बनाए हुए हैं वे वास्तव में ठीक नहीं हैं। हम हर रोज़ पढ़ी हुई स्वतन्त्र लड़कियों के सम्बन्ध में सौ-सौ बातें सुनते रहते हैं, खुल्लम-खुल्ला फिरने वाली एवं स्वतन्त्र विचारों की स्त्रियों पर कई प्रकार के आरोप लगाए जाते हैं और कालिज की लड़कियाँ तो बहुत ही बदनाम हैं। इस प्रकार की बातों में कितनी सचाई है और कितना झूठ, यह पता लगाना बहुत कठिन है। वास्तव में ऐसी किंवदन्तियां

उन लोगों के मस्तिष्क में जन्म लेती हैं जो अपनी काल्पनिक दुनियां में ऐसा ही कुछ होता देखते हैं या उनकी तीव्र इच्छा होती है कि ऐसा ही कुछ होवे। अर्थात् इस प्रकार की बहुत सी 'घटनाएँ' केवल कपोल-कल्पित एवं मन-गढ़न्त ही होती हैं। हां, यह सम्भव है कि पिंजरे में पड़े हुए पंछी को यदि सहसा छोड़ दिया जावेगा तो वह निकलकर, स्वतन्त्रता के जोश में, शायद दीवार से जा टकराए, परन्तु यह बात होनी ज़रूरी नहीं है। सब बातों को देखते हुए हमें चाहिये कि अब हम अपनी शंका करने की प्रवृत्ति को छोड़कर लड़कियों के बन्धनों को खोल दें।

हम जितना अधिक उन्हें दबाकर और बन्धनों में जकड़कर रखेंगे वे उतना ही अधिक विद्रोह करेंगी और गलत ढंग से हमारे हाथों में से निकलने का प्रयत्न करेंगी। लड़कियों के मन पर हर समय यह छाया पड़ी रहती है कि उनके माँ-बाप उन पर हर समय सन्देह करते रहते हैं और वे उनका तनिक-सा भी विश्वास नहीं करते। यह उनके आत्म-सम्मान पर बड़ा भारी आघात है और समझदार लड़कियां इस बात पर बहुत बुरा मानती हैं। वास्तव में ऐसी स्थिति में हर व्यक्ति ऐसा ही महसूस करेगा। इसका परिणाम यह हो रहा है कि स्त्री-जाति में दिन-प्रति-दिन बेचैनी बढ़ रही है। यदि हमने उनके विचारों और भाव-नाओं का निरादर किया तो सम्भव है कि वे किसी अनुचित मार्ग पर भटक जायँ—जैसा कि आजकल हम कई स्त्रियों को देख रहे हैं। हमारे अनुचित बन्धनों से तंग आई हुई नारियां अपनी

सभ्यता और आदर्शों को तिलांजलि देकर पश्चिमी सभ्यता की पुजारिन बनती जा रही हैं। कितनी ही स्त्रियां भाई-चारा सम्बन्धी समस्त पुराने रीति-रिवाजों को छोड़कर अनुचित ढंग से स्वतन्त्रता का प्रयोग कर रही हैं और सारे सगे-सम्बन्धियों के लिये दुःख और कलह का कारण बन रही हैं। इसका सही इलाज यह है कि हमें चाहिए कि स्त्रियों के प्रति हम अपना दृष्टिकोण बदल लें और उन्हें 'विषयों की खान' समझना छोड़ दें। हमारे 'आचरण' तब तक ठीक नहीं होंगे जब तक हम उन्हें अपना आचरण शुद्ध रखने का अवसर नहीं देंगे। यदि हम स्त्रियों को अपने पांव पर खड़ा होने का अवसर ही नहीं देंगे तो वे अपने पांव पर खड़ी होने में किस तरह समर्थ हो सकेंगी? जब हम उनका 'बन्द' रहना ही अच्छा समझते हैं तो फिर तो उनके बाहर अकेली फिरने से हम आप ही घबरायेंगे। यदि स्त्रियां आम तौर पर स्वतन्त्र और खुले तौर पर घूमें-फिरेंगी तो कोई भी व्यक्ति उन्हें कुछ 'कहने' का साहस ही नहीं करेगा। यदि स्त्रियां साहसी और निडर हों तो कोई उनके सामने आंख उठाने का दुस्साहस कर ही नहीं सकता। हमने स्त्रियों को निर्बल कह-कहकर उन्हें इतना निर्बल, साहस-हीन और डरपोक बना दिया है कि अब वे सचमुच ही असहाय और बेबस-सी हो गई हैं। फिर भी कई लड़कियां इतनी साहसपूर्ण निकल आती हैं कि यदि कोई लड़का उन्हें छेड़े तो वे उसका करारा उत्तर देकर या उसे जूतियां मारकर ऐसा सीधा कर देती हैं कि ऐसी अनुचित चेष्टा करने का विचार उसके

मस्तिष्क में से सदा के लिए उड़ंछू हो जाता है। ऐसे लोगों को सीधा करने का यही एकमात्र उपाय है और यह उपाय स्त्रियों के अपने हाथ में है।

घरों में भी हमें अपना व्यवहार बदलना पड़ेगा। अपने लड़के-लड़कियों पर जितनी कम शंका हम करेंगे उनका आचरण उतना ही ऊंचा होगा। और जितना अधिक हम उन्हें दबायेंगे और बन्धनों में जकड़ेंगे उतने ही अधिक वे बिगड़ेंगे। यदि हम उनके विचारों और भावों को सहानुभूति-पूर्वक समझने का प्रयत्न करेंगे तो हमें पता लगेगा कि युवावस्था में 'विषयों' को छोड़कर अन्य बहुतेरी बातें उनको दिलचस्पी को अपनी ओर खींच सकती हैं। बाल्यकाल से निकलते ही जवान लड़के-लड़कियां सीधे 'विषयों' की दुनिया में ही नहीं जा बसते। यदि हम उन्हें आरम्भ से ही सुशिक्षा देंगे तो कोई कारण नहीं कि वे बिगड़ जायँ। हां, उनके पास-पड़ौस का अच्छा होना भी आवश्यक है। यदि बाल्य-काल से ही उनका वास्ता अच्छे लोगों से और अच्छी शिक्षा से पड़ता आया है तो उनमें कभी बुरी आदतें नहीं पड़ सकतीं। यदि हम उन्हें बचपन से ही भाइयों तथा अन्य सज्जन मित्रों के साथ खुले तौर पर बात-चीत करने तथा विचारों का आदान-प्रदान करने की छुट्टी देंगे तो उनके मन में चोरी-छुप्पे किसी से बातें करने की इच्छा कभी पैदा नहीं होगी। साथ ही उन्हें भले-बुरे की भी थोड़ी-बहुत पहचान हो जायगी। घरों में हमने कड़े नियम और बन्धन रखे हुए हैं, किन्तु समाज की प्रगति तथा अन्य कारणों से

बहुत से लोग अपनी लड़कियों को पढ़ा रहे हैं। ऐसी लड़कियां जो एक ओर तो स्कूल-कालिजों में पढ़ रही हैं, और दूसरी ओर घर में पुराने बन्धनों के वातावरण में रहने के लिये विवश हैं, वे अपने स्कूल-कालिजों में घुल-मिल जाती है और अपनी इस स्वतन्त्रता का कई अनुचित ढंगों से प्रयोग करने लगती हैं। यदि उन्हें घरों में ही उचित स्वतन्त्रता दे दी जावे तो वे बाहर अपनी स्वतन्त्रता का अनुचित प्रयोग कभी न करें। अनुचित दबाव में रखना हानिकारक होता है।

एक और बड़ी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमारे घरों में मां-बाप और पुत्र-पुत्रियों के बीच में बहुत बड़ी खाई रहती है। मां-बाप अपने पुत्र-पुत्रियों के साथ कभी खुले तौर पर घरेलू एवं सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में विचार-विमर्श नहीं करते। उन्हें अपने बच्चों के विचारों, भावों और आदर्शों के सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं होता। इसी लिये उनकी साधारण बातों और चेष्टाओं के प्रति भी हम सशंक रहते हैं। यदि हम उनसे खुले ढंग से बातचीत करेंगे, उनके व्यक्तित्व को और उनके दृष्टिकोण को सहानुभूतिपूर्वक समझने का प्रयास करेंगे तो हम उनको संदेह की दृष्टि से देखना छोड़ देंगे। तभी हमारे और उनके बीच की खाई पटेगी और पारस्परिक विश्वास उत्पन्न होगा। इसलिये हमें चाहिये कि हम उन्हें अपने विचार हमारे सामने रखने के लिये पूरा प्रोत्साहन दें, ताकि उन में विविध समस्याओं पर स्वतंत्रता-पूर्वक विचार करने की आदत पैदा हो।

चरित्र की दो कसौटियां

पुरुष और स्त्री को हम लोग अलग-अलग कसौटियों से परखते हैं। हम जिन दुर्बलताओं को स्त्री-जाति के लिये घोर अपराध मानते हैं, उन्हें पुरुषों में देखकर हम उनकी ओर से सहज में ही आंखें बन्द कर लेते हैं। स्त्री के लिये 'पतिव्रत धर्म' एक अत्यन्त आवश्यक, वरन् बुनियादी गुण, माना जाता है, किन्तु हमारे सामाजिक विधान में पुरुष के लिये 'पत्नी-व्रत' अथवा इसी प्रकार के किसी गुण की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। हमारा चरित्र-सम्बन्धी नापमान भी विचित्र है। जिस बात को हम मनुष्य-समाज के एक अंग के लिये महापाप समझते हैं वह दूसरे अंग के लिये गुण नहीं तो कम से कम कोई अवगुण भी नहीं मानी जाती। यह स्थिति इसीलिये है कि हमारे सब सामाजिक विधान पुरुषों के बनाए हुए हैं। यदि ये विधान स्त्रियां बनाती तो न जानें पुरुष-जाति की क्या दुर्दशा होती। परन्तु आज भी जब कि समय की गति और मांग को हम पूरे तौर पर अनुभव कर रहे हैं, हम लोग पुरानी रूढ़ियों पर अड़े हुए हैं। जब कभी दो-चार अच्छे पढ़े-लिखे व्यक्तियों में इस समस्या पर बात-चीत होती है तो उनमें से एक दो व्यक्ति अवश्य यही कहेंगे—"देखिये जी, हमारा सामाजिक विधान बहुत ठीक है, क्योंकि स्त्री और पुरुष एक दूसरे का

हाथ बटाते हैं। स्त्री घर और बाल-बच्चों को सम्भालती है और पुरुष बाहर के काम-काज देखता-भालता है।"

कहने को तो यह बात ठीक है, परन्तु देखना यह है कि यह बटवारा हमने एक-दूसरे की अनुमति से किया है, या पुरुष ने बलपूर्वक स्त्री को इस स्थिति में बिठा रखा है। यदि हम मनुष्य-जाति के विवाह-सम्बन्धी इतिहास का अध्ययन करें तो हमारी आंखें खुल जाएंगी कि किस तरह जब से संसार की उत्पत्ति हुई है, पुरुष सदा स्त्री पर अत्याचार करता आया है। पुरुष ने नारी को सदा अपने दबाव में रखा है। पिछली एक-आध शताब्दी में ही हम देखते हैं कि नारी ने अपनी हालत को सुधारने का थोड़ा-बहुत प्रयत्न किया है। परन्तु पुरुष सदा उसकी स्वतन्त्रता का विरोध करता आया है—क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपना शासन और प्रभुत्व छोड़ना पसन्द नहीं करता। यह सब कुछ होते हुए भी पुरुष यही कहते रहते हैं कि पुरुष और स्त्री एक दूसरे का हाथ बटाने वाले हैं। यदि हम किसी स्त्री से इस प्रश्न के सम्बन्ध में पूछें तो हमें पता लगे कि वे क्या महसूस करती हैं। परन्तु पुरुष नारी के मन का वास्तविक भाव जानने का प्रयत्न ही कब करता है?

दुर्भाग्य से हमने यह समझ लिया है कि लड़की युवावस्था में पांव रखते ही 'फिसल' जाती है। इसलिये विवाह से पूर्व हम उसे मां-बाप की क़ैद में रखते हैं और विवाह के बाद पति की क़ैद में। परन्तु नारी-हृदय स्वभाव से दूषित एवं पापमय नहीं होता। नारी के हृदय में भी वे ऊंची-ऊंची और महान् अभिलाषाएं ठाठें मारती

हैं जिनको हम कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकते। हम स्त्री को मां, बहन, बेटी या पत्नी के रूप में देखते हैं, कभी उसे केवल-मात्र 'नारी' के रूप में नहीं देख पाते। यही कारण है कि हम सदा उसे संदेह की दृष्टि से देखते हैं।

आजकल भी जब अच्छे पढ़े-लिखे, समझदार लोग इस समस्या पर विचार-विनिमय करते हैं तो बड़े जोश के साथ यह विचार प्रकट करते हैं कि नारी का उचित क्षेत्र घर ही है। हां, यदि कोई उन्हें आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियों अथवा विलायत की लड़कियों के महान् कार्यों की बातें सुनाता है तो वे उन्हें बड़े चाव और हर्ष के साथ सुनते हैं। परन्तु फिर भी वे यह नहीं चाहते कि उनके अपने घर की लड़कियां वैसे ही साहस के, देश-सेवा के, अथवा आत्मोन्नति के कार्य करें। दूसरी लड़कियों को महान् कार्य करते हुए, युद्ध में भाग लेते हुए, ऊंची-ऊंची उपाधियां प्राप्त करते हुए, हवाई जहाज़ चलाते हुए देखकर हम लोग मुक्त-कंठ से उनकी प्रशंसा करने को तैयार हैं, परन्तु हमें यह सहन नहीं है कि हमारी स्त्रियां उस प्रकार के कार्य करें—क्योंकि ऐसा करने से वे हमारे हाथों में से निकल जावेंगी। अर्थात् इस मामले में भी हमने दो कसौटियां रखी हुई हैं—एक दूसरे देशों की अथवा अपने देश के प्रगतिशील लोगों की स्त्रियों के लिये, और दूसरी अपने घरों की स्त्रियों के लिये।

पुरुष-जाति का भला क्या अधिकार है कि वह स्त्री-जाति के लिये सब तरह के नियम-क़ानून बनाकर उन्हें उन पर चलने के

लिये विवश करे। यह कितना घोर अनर्थ है कि मनुष्य-जाति की एक श्रेणी दूसरी श्रेणी पर इतने अत्याचार कर रही है कि दूसरी श्रेणी पर नहीं मार सकती। यदि कोई स्त्री कभी मुँह खोलने का साहस कर बैठे तो पुरुष तुरन्त कह देता है, "ख़बरदार, जो सर उठाया तो। तेरा रोटी-पानी बन्द कर दूंगा और घर से बाहर निकाल दूंगा।" इस पर हम दावा करते हैं कि स्त्री-पुरुष एक ही गाड़ी के धुरे के दो सिरे हैं अथवा समाज-रूपी रथ के दो पहिये हैं। स्त्रियों को भी अपना निर्णय स्वयं करने दो और उन्हें इस बात का अवसर दो कि वे आपस में मिल-बैठकर कोई ऐसा सामाजिक विधान बनाएं जिससे पुरुष तथा स्त्री दोनों सुखी हों। यदि हम अपनी हठ पर इसी तरह अड़े रहे तो वह दिन दूर नहीं जब स्त्री पुरुष को उसी तरह अपने पंजे में दबाकर रखेगी जिस तरह आज तक पुरुष ने स्त्री को रखा है। इस बात के चिन्ह दिखाई भी देने लग गए हैं।

स्त्रियों की दिन-चर्या

स्त्रियों को यदि घर के काम-धन्धों से तनिक भी अवकाश न मिले और अपनी सखी-सहेलियों तथा आस-पड़ौस की मिलने-जुलने वाली स्त्रियों के यहां जाकर उनके साथ थोड़ी-बहुत देर उठने-बैठने और गपशप लगाने का अवसर न मिले तो निःसंदेह उनका जीवन इतना रूखा-फीका हो जाए कि वे झुर-झुर कर ही मर जायँ। स्त्रियां कभी अकेली नहीं रह सकतीं—अकेलापन उनके लिये मृत्यु के सदृश है। वे पुरुषों की अपेक्षा अधिक मिलनसार होती हैं। पुरुष अकेला रह सकता है—बल्कि कई पुरुष तो अकेले ही रहना पसन्द करते हैं—किन्तु स्त्री कोई-कोई ही एकान्त-प्रिय होती है। और यदि कोई स्त्री ऐसी हो भी तो उसे आस-पड़ौस की स्त्रियां तंग करती रहती हैं। स्त्रियां बहुत जल्दी एक-दूसरी के साथ भाई-चारा डाल लेती हैं। वे एक-दूसरी के साथ लड़ भी बहुत जल्दी पड़ती हैं परन्तु फिर वे मन भी बहुत जल्दी जाती हैं। लड़ाई तो उनकी जान है और उनका गहरा प्रेम उसी के साथ होता है जिसके साथ एक-दो बार वे लड़ चुकी हों।

स्त्रियों की पारस्परिक मित्रता भी बड़े विलक्षण ढंग की होती है। यदि आप कभी उनका पारस्परिक लेन-देन, भाजी आदि का

आदान-प्रदान देखें और उनकी बातें सुनें तो आश्चर्य-चकित रह जाएँ। चूल्हे-चौके के काम से निवृत्त होकर एक महिला बाहर गली-मुहल्ले में निकलती है और निश्चित ठिकाने पर पीढ़ी-चारपाई डालकर बैठती है। फिर वह औरों को बुलाना शुरू करती है। "अरी ओ रानी की माँ! अरी निकल भी घर में से। आज तुझे क्या हो गया है?" रानी की मां अन्दर से ही उत्तर देती है, "आई री आई! क्या करूँ इस मुन्ने ने तो मुझे खा लिया। न रात को सोने देता है, न दिन को आराम से बैठने देता है। इसे सुलाकर अभी आई।"

फिर दूसरी को आवाज़ दी जाती है, "ओ बन्सो की मां, अरी आज क्या तेरे पाँव में कांटे लग गये? और दिनों तो तू सब से पहले आया करती थी। आज क्या हो गया है तुझे?" बन्सो की मां मकान की चौखट पर आकर खड़ी हो जाती है और कहती है, "बहन क्या करूँ? ये मेरे रोज़-रोज़ के मेहमान मुझे तो जीने न देंगे। उनकी जान को रो रही हूँ। मैं भी मैके चली जाऊँगी तो कुछ सुख का सांस मिलेगा। और फिर उन्हें भी आटे दाल का भाव मालूम हो जाएगा। जब पीछे से बाजार की रोटियाँ खानी पड़ेंगी तब होश आएगा। रोज़ पीटती हूँ कि कोई नौकर रख लो, मेरे से सारा दिन चूल्हे के पास नहीं बैठा जाता। पता नहीं परमात्मा ने औरत क्यों बनाई थी।"

फिर शीला की भाभी का नम्बर आता है। वह चिल्लाकर कहती है, "बहन, क्या बताऊँ, आज मेरी ननद ने सुसराल जाना

है। उसके वास्ते 'वे' बाज़ार से कुछ लेने गये थे, अब तक वापस नहीं आए हैं। क्या करें, ननद रानी का तो कभी पेट भरता ही नहीं। जब आती है कपड़े भी ले जाती है, चीज़ें भी ले जाती है, मुट्ठी भर कर रुपये भी देते हैं, फिर भी नाराज ही रहती है। उसके बच्चों की हथेली पर कुछ न रखो तो मुँह चढ़ा लेती है। कभी कहती है मुझे बनारसी साड़ी ले दो, कभी यह कभी वह, बस पूछो ही मत। उसके हुक्म तो पूरे होते ही नहीं। भुखमरी कहीं की, वह तो किसी तरह भी नहीं रझती। ससुराल से चिट्ठी लिख-लिखकर भी चीज़ें मँगाती रहती है। हमारा अपना गुज़ारा बड़ी मुश्किल से होता है, बताओ इसका नित-नया तक़ाज़ा कहां से पूरा करें। भाई हैं कि सारा घर उठाकर बहन को दिये चले जा रहे हैं, अपने घर का उन्हें ख्याल ही नहीं है। मेरे तो कपड़े फटे हुए हैं, क्या मजाल जो कभी एक मोटी धोती लाकर मुझे दी हो। इधर-उधर से थोड़े बहुत पैसे बचाकर मैं स्वयं ही फेरी वाले से अपने लिए कपड़ा-लत्ता खरीद लूँ तो भले ही खरीद लूँ। मेरे लिये तो कपड़े खरीदने की उन्होंने जैसे क़सम खा रखी है। हां, बहन के लिये बढ़िया से बढ़िया कपड़ा आ ही जाता है।"

इतने में रानी की मां आ जाती है और उधर से बन्सो की मां आ पहुँचती है। अब बाज़ार पूरी तरह गरम हो जाता है। साथ-साथ नाले-दुपट्टे काढ़ती या स्वेटर बुनती जाती हैं और साथ ही अपनी राम-कहानी सुनाती जाती हैं। किसी की स्तुति करती हैं, किसी की निन्दा। स्तुति कम और निन्दा अधिक होती है।

बस, यही कुछ है स्त्रियों की बातों का क्षेत्र। शीला की भाभी बात छेड़ती है, "भई, सोमां की मां ने अपनी बेटी को बड़ा कुछ दिया। सत्रह तीयल, सोने के कड़े, टीका, गलसरी, झुमके की जोड़ियां, जारजट की और बनारसी साड़ियां। लड़के के भी कई सूट थे। साथ ही उसकी घड़ी, सोने के बटन ... .और बहन, बरतन तो अनगिनत थे—थाल, गिलास, कटोरियाँ, परांत, कूंड, पिरच-प्याले और न जाने क्या कुछ था! तूने तो देखा ही था बन्सो की माँ।"

"अरे सब देखा था," बन्सो की माँ नाक-भौं चढ़ाकर कहती है, "यूँ ही फैलाव फैला रखा था, अन्दर तो कुछ भी नहीं था। सारे बर्तन इतने हल्के थे कि पूछो ही मत। और ज़ेवर तो सब गिन्नी के थे। और अन्दर चाँदी ही भरी हुई हो तो कौन जाने।"

शीला की भाभी भी अब बन्सो की मां की हाँ में हाँ मिलाकर कहती हैं, "हाँ, हो सकता है चाँदी भरी हुई हो। हमने कौन से तोड़-तोड़कर देखे थे। और फिर बेचारी सोमां की माँ करती भी क्या। जिसके पास जितना होगा वह उतना ही तो देगा।"

रानी की माँ बीच में ही बोल उठती है, "सोमां की माँ ने क्या ख़ाक दिया है! इतनी ऊँची नाक वाली बनी हुई थी—इतना लम्बा-चौड़ा व्यापार चल रहा है उनका, उस पर यह भी कुछ देने में देना हुआ। वह देखा था तुमने—शान्ति की मां ने कितना दिया था! मोटर दी, लड़के को सोने की घड़ी दी, लड़की को बीसियों साड़ियाँ—एक से एक बढ़िया।"

बन्सो को माँ कहती है, "हाँ, हाँ, मैंने भी वह दहेज देखा था। उन्होंने तो साथ में सोफ़ा-सैट भी दिया था। शान्ति को तो बहुत कुछ मिला था।" शीला की भाभी फिर बीच में बोल उठती है, "तो फिर बेचारी सोमां को क्या मिला—खाक ?"

स्त्रियाँ हाँ में हाँ मिलाने में इतनी सिद्ध-हस्त होती हैं कि क्षण भर में ही अपनी कही हुई बात के बिल्कुल विरुद्ध बात की हाँ में हाँ मिलाने लग जाती हैं।

इसी प्रकार की बातें करते हुए स्त्रियों का दिन तुरन्त बीत जाता है। किसी की धी-बेटी को ससुराल जाना हुआ तो वहां 'शगन' आदि लेकर पहुँच गईं। 'शगन' लेने वाली का भी परम कर्तव्य होता है कि दो-चार बार ना-ना करे। फिर उसे 'शगन' लेना ही पड़ता है।

शहर के किसी भाग में किसी के यहां, जिससे थोड़ी-बहुत भी जान-पहचान हो, यदि मृत्यु हो जाती है तो सोग मनाने वहाँ जाना ज़रूरी होता है। सब बाल-बच्चों को घर पर छोड़कर मृतक के घर जाकर घण्टों विलाप करना और रोना-पीटना पड़ता है। पता नहीं स्त्रियों को अचानक रोना कहां से आ जाता है। चाहे स्वर्गवासी से उनका साधारण-सा और बहुत दूर का ही सम्बन्ध हो, परन्तु वे इस तरह आँसू बहाएंगी जैसे उन्हें बड़ी गहरी मार्मिक चोट पहुँची है। रो-रोकर आंसुओं के दरिया बहा डालती हैं। 'पल्ला' जब तक कोई न छुड़ावे छोड़ती ही नहीं। आश्चर्य होता है कि 'रोने' की क्रिया पर स्त्रियों ने किस तरह काबू पाया हुआ है—जब

आवश्यकता हुई तुरन्त आंसू बहा दिये—और जितनी देर चाहें उतनी देर—घण्टों—रो सकती हैं।

सियापे-सोग से वापिस आते हुए रास्ते में जीतो की मां मिल गई, "अरी! ईश्वर देवी के लड़का हुआ है। वहां नहीं चलना है क्या? चलो बधाई दे आएं।" बस, सारा का सारा झुण्ड ईश्वर देवी के यहां चल पड़ा। वहां पहुँचकर सब स्त्रियां ईश्वर देवी को सौ-सौ बधाइयां देती हैं। उसके चाँद जैसे पुत्र को देख कर वारी-वारी जाती हैं। वह मुँह मीठा कराती है और उन्हीं स्त्रियों के मन, जो अभी घण्टा भर पहले आंसुओं के दरिया बहा रहे थे, अब हर्ष-विभोर हो उठते हैं। शाम के समय घर लौटकर ये महिलाएं अपने-अपने कुटुम्ब के लिये खाना पकाने के कार्य में जुट जाती हैं।

यह है हमारे घरों में स्त्रियों का नित्य-कर्म। इनका सारा जीवन इसी तरह व्यतीत होता है।

हमारा देश कैसे उन्नति करेगा, जहां नारी-जाति के जीवन की यह दिनचर्या हो। अपने अमूल्य जीवन को इस तरह व्यर्थ के कामों में गंवाते हुए उन्हें अपने बच्चों की देख-भाल और शिक्षा के प्रति ध्यान देने के लिये समय कैसे मिल सकता है? कैसे हमारी स्त्रियां देश-सुधार के कार्यों में दिलचस्पी ले सकती हैं और देश के पुनर्निर्माण की योजनाओं में हाथ बटा सकती हैं? इस बात की बड़ी सख़्त ज़रूरत है कि स्त्रियां अपने दैनिक

अवकाश के समय को अच्छे कामों में लगाएं—पुस्तकों का अध्ययन करें, अपने बच्चों को विद्या पढ़ाएं, घर को स्वच्छ, सुन्दर बनाएं, और अन्य लाभप्रद तथा आत्मोन्नति के कार्य करें। इसलिये पहले स्वयं उन्हें समुचित शिक्षा प्रदान करनी होगी।

सास, ननद और जेठानियाँ

सास-बहू, ननद-भावज और देवरानी-जेठानी को आज तक नहीं बनी। एक दूसरी का सदा बैर-भाव ही रहा है। जब ये लड़ती हैं तो एक दूसरी के अगले-पिछलों को धुन डालती हैं। इस बैर के कारण कई घरों का नाश हो जाता है। इस पारस्परिक कलह के कारण गृहस्थ-जीवन को हमने नरक बना दिया है।

लड़कियों को छोटी अवस्था से ही मातायें यह सिखाना प्रारम्भ कर देती हैं कि सास बहुत बुरी होती हैं, ननदें भी बहुत ख़राब होती हैं और जेठानियाँ बैरिन होती हैं। अपनी सास-ननद और जेठानियों के प्रति अपने व्यवहार से मातायें अपनी पुत्रियों के मन पर पूरी तरह अंकित कर देती हैं कि सास-बहू, ननद-भावज और देवरानी-जेठानियों का सदा झगड़ा रहता है। गृहस्थ-जीवन के विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले लोकगीत भी इन्हीं भावनाओं को लिये हुए होते हैं।

छोटी आयु में ही जब ये विचार लड़कियों के मस्तिष्क में भर जाते हैं तो फिर बड़े होने पर उनका निभाव सास आदि के साथ कैसे हो सकता है? यदि माँ कभी बेटी पर क्रोध भी करती है तो उसे यही कहती है "अगले घर जाकर तेरा कैसे निभाव होगा? तू ऐसा करेगी तो सास नोचकर खा जाएगी"। लड़की

को ससुराल एक 'हौवा' बनाकर दिखाई जाती है जहाँ हर कोई उसे काट खाने को दौड़ेगा। जब माताएँ और सहेलियाँ लड़कियों को यह शिक्षा देकर ससुराल भेजती हैं तो यह प्रगट है कि वे वहाँ जाकर किस प्रकार का आचरण और व्यवहार करेंगी। सास-बहू, ननद-भावज और देवरानी-जेठानियों का आपस में क्यों कलह होता है? उनका पारस्परिक विरोध कैसे प्रारम्भ हुआ? माताएँ अपने पुत्रों का विवाह ही इस विचार को लेकर करती हैं कि "बहू आएगी, कुछ मालताल लाएगी, हमारा हाथ कुछ हल्का होगा, हम पलँग पर बैठेंगी, बहू आप खाना बनाएगी, हमें खिलाएगी और हमारी सेवा करेगी।" जब बहू आती है तो उसका सारा दहेज सास हथिया लेती है ताकि वह उसे अपनी बेटी के दहेज में दे सके। पहले कुछ दिन बहू की खूब खातिर होती है, फिर उसको झाड़ें मिलनी धीरे २ प्रारम्भ हो जाती हैं। फिर यह झाड़ और कहना-सुनना दिन-दिन बढ़ता जाता है। यदि बहू पेट-भर रोटी खाये तो बोली मारी जाती है, यदि वह तनिक आराम करने बैठ जाये तो उसे तँग किया जाता है, यदि वह कभी दरवाजे की चौखट पर खड़ी दिखाई दे जाय तो समझो उसकी शामत आ जाती है। बहू के विरुद्ध सब झूठी-सच्ची शिकायतें सुनी जाती हैं। कोई छोटा बच्चा भी आकर कुछ शिकायत करदे, तो तुरन्त उस बहू को लताड़ा जाता है और उसके मायके वालों को बे-बात खरी-खोटी सुनाई जाती है। सासें अपनी बहुओं को नौकरों से भी परे समझती हैं। यदि उसके

पति को थोड़ी-सी भी तकलीफ़ हो जाय तो बहू का जीना दूभर कर दिया जाता है। उसको ऐसी बोलियाँ सुनाई जाती हैं मानो अपने पति की बीमारी के लिये वही ज़िम्मेदार है। यह है व्यवहार हमारे घरों में सासुओं का अपनी बहुओं के प्रति। सासुओं का यह सिद्धान्त है कि जब तक बहुओं के साथ कठोर व्यवहार न करो और उन पर डँडा न बरसाते रहो तब तक बहुओं का दिमाग़ ठीक नहीं रहता।

ननदों का सदा से यह सिद्धान्त चलता आया है कि भौजाइयों को चाहिये कि वे मायके में से सब कुछ झाड़ू लगाकर उठा लायें। यदि कभी किसी अवसर पर भावज कुछ कम सामान लावे तो सारी गली-मुहल्ले में उसकी बुराई करना वे अपना परम-धर्म समझती हैं। दूसरा परम कर्तव्य उनके सामने यह रहता है कि भौजाई के विरुद्ध भाई को हर समय उकसाती और भड़काती रहें, चाहे उसकी झूठी शिकायतें ही क्यों न करनी पड़ें। यदि पति अपनी पत्नी की कभी तरफ़दारी करे तो बहिन भाई के विरुद्ध भी तूफ़ान मचा देती है।

भाइयों भाइयों के जायदाद आदि सम्बन्धी झगड़े आपस में होते रहते हैं। ऐसे अवसरों पर देवरानियाँ-जेठानियाँ बड़े यत्न से आग पर तेल डालने का काम करती हैं। वे पूरी कोशिश करती हैं कि आपस में समझौता न होने पाये। पति के घर में आते ही पत्नी उसे उसके भाइयों के विरुद्ध दो-चार झूठी-सच्ची लगाने का काम अति आवश्यक समझती हैं। आपस में लड़ने के लिये,

देवरानी-जेठानियों को यदि और कोई बहाना न मिले तो एक दूसरी के बच्चों पर ही बरस पड़ती हैं। बस लड़ने का रास्ता अपने आप ही खुल गया।

यह बात नहीं है कि सास, ननद और जेठानियाँ ही ख़राब होती हैं और बहुएं, भौजाइयाँ और देवरानियाँ बेचारी बड़ी निर्दोष और अबोध होती हैं। ताली हमेशा दोनों हाथों से बजती है। जहाँ लड़ाई-दँगा एवं कलह हो वहाँ समझ लो प्रायः दोनों दलों का दोष है—चाहे किसी एक दल का दोष अधिक हो चाहे थोड़ा। कई बहुएं भी बड़ी बेढब होती हैं। यही बात बहुत सी भौजाइयों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। बहुधा सास, ननदें और जेठानियाँ तो अत्याचार करती ही हैं किन्तु बहुएं, भौजाइयाँ और देवरानियाँ भी कुछ कम नहीं होतीं।

लड़कियों को हम विवाह से पहले ही यह सिखा-पढ़ा कर भेजते हैं कि उसे ससुराल में जाकर सास आदि का किस तरह सामना करना चाहिये। फिर उसे अपने, अर्थात् माता-पिता के घर में, भी वही कुछ नित्य-प्रति देखने को मिलता है। परिणाम यह होता है कि वह ससुराल जाते ही उसी प्रकार का आचरण करने लग जाती है जिसका उसके मन पर ठप्पा लगा हुआ होता है। फिर जो आज बहू हैं, वे कल सास बन जाती हैं और तब वे अपनी बहुओं के साथ वैसा ही व्यवहार करती हैं जैसा कि उनकी सास ने उनके साथ किया था। जो स्त्री अपनी ननदों के व्यंग-बाणों से सताई हुई है वह अपने मायके जाकर अपना क्रोध

अपनी भौजाई पर निकालेगी। देवरानी-जेठानियाँ तो अपना हिसाब तुरन्त बराबर कर लेती हैं। मेल-जोल बढ़ाना और लड़ाई मोल लेना तो स्त्रियों की जान है, इसके बिना उन्हें खाना हजम नहीं होता।

वास्तविक बात यह है कि हमारी रिश्तेदारी की नींव ही ग़लत नियमों पर रखी हुई है। सास उस बहू से प्रसन्न रहती है जो अपने मायके का घर बुहारकर अपने ससुराल का घर भर दे। ननद उसी भौजाई को पसन्द करती है जो उसे मुँहमांगी चीज़ें देती रहे और कभी इन्कार न करे। जेठानी को भी वही देवरानी भाती है जो घर की चीज़ों में से कोई हिस्सा न माँगे बल्कि अपना माल देती चली जाय। हमारे सारे कौटुम्बिक सम्बन्धों की नींव लेन-देन के ऊपर है।

जहाँ लोभ और स्वार्थ हो वहाँ सच्चा प्रेम कैसे हो सकता है?

विद्या

आजकल स्त्री-शिक्षा का बहुत प्रचार हो रहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ वर्षों तक हमारी सब बहनें पढ़ जाएँगी और लड़कियों के लिये विद्या-प्राप्ति उतनी ही आवश्यक समझी जावेगी जितना आजकल उनके लिये दहेज समझा जाता है। देश में स्थान-स्थान पर लड़कियों के लिये स्कूल-कालिज खुल रहे हैं। लड़कियों में विद्या के लिये रुचि इतनी बढ़ गई है कि जहां उनके लिये अभी अलग स्कूल-कालिज नहीं खुल सके हैं वहाँ वे लड़कों के स्कूल-कालिजों में ही दाखिल हो जाती हैं। कई स्कूल-कालिजों में स्थान के अभाव के कारण प्रवेश बन्द कर दिया जाता है; वहाँ बेचारी लड़कियाँ 'प्राइवेट' स्कूल-कालिजों में दाखिल हो जाती हैं। बड़े-बड़े शहरों में इन 'प्राइवेट' स्कूलों व कालिजों की संख्या, विशेषकर केवल लड़कियों के स्कूलों व कालिजों की संख्या, दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है—इसके अतिरिक्त प्राइवेट परीक्षार्थी के रूप में यूनिवर्सिटियों की विभिन्न परीक्षाओं में बैठने की प्रथा भी लड़कियों में बहुत प्रचलित हो गई है।

लड़कियों में दो तरह की पढ़ाई दिनों-दिन बढ़ रही है। शहरों में सवेरे साइकिलों पर, बसों में या पैदल ही लड़कियों के दल के दल स्कूलों व कालिजों की ओर लपकते दिखाई देते हैं।

गाँवों में अभी स्त्री-शिक्षा का इतना प्रचार नहीं हुआ है, परन्तु बड़े-बड़े गाँवों में भी अब लड़कियों के छोटे-मोटे स्कूल खुलते जा रहे हैं। सारांश यह कि स्त्रियों में विद्या-प्राप्ति के लिये काफ़ी लगन पैदा हो गई है। हमें आशा रखनी चाहिये कि कुछ वर्षों के पश्चात् स्त्रियां भी पुरुषों की भांति सब प्रकार के पदों पर सुशोभित दिखाई देंगी। स्त्रियां देश के राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा अन्य सब प्रकार के कार्यों में भाग लेंगी और सब क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा के चमत्कार दिखाएँगी। इसी प्रकार वे साहित्य के क्षेत्र में भी आगे बढ़ेंगी और उनकी सुन्दर रचनाओं से साहित्य की श्री-वृद्धि होगी। अर्थात् स्त्रियां प्रत्येक क्षेत्र में अपना कौशल उसी तरह दिखाएंगी जिस तरह आज तक पुरुष दिखाते आए हैं। परन्तु यह आशा हम तभी रख सकते हैं जब स्त्रियों की वर्तमान शिक्षा-दीक्षा ठीक मार्ग पर चल रही हो और उसमें कोई त्रुटियां एवं दोष न हों।

स्त्री-शिक्षा भी हमारे यहां विलक्षण ढंग से शुरू हुई है। हम प्रायः लड़कियों को इस विचार से नहीं पढ़ाते कि उनका पढ़ना उतना ही आवश्यक है जितना लड़कों का। हम कहते हैं कि "लड़कियों ने पढ़-लिखकर कौन-सी नौकरी करनी है।" हम उन्हें वास्तव में इसलिये पढ़ाते हैं कि अनपढ़ रह जाने से उनका सम्बन्ध अच्छे लड़के से और अच्छे घर में होने में कठिनाई होती है। आजकल के लड़के ऐसे 'बिगड़' गए हैं कि वे पढ़ी-लिखी लड़की माँगते हैं। माँ-बाप बेचारे देख-देखकर कुढ़ते रहते

हैं। ज़माना ऐसा ख़राब आ गया है कि किसी लड़के से रिश्ता करने की बात कहो या किसी के द्वारा कहलाओ तो पहला प्रश्न वह यही पूछता है कि लड़की कितनी पढ़ी हुई है। मां-बाप इसी डर से जिस तरह भी हो सके अपनी बेटियों को विद्याध्ययन कराते हैं। जब तक लड़की का सम्बन्ध नहीं हो जाता तब तक घर वालों की जान को बड़ा झंझट रहता है। लोग सौ-सौ तरह की बातें करने लगते हैं। मां को तो रातों नींद नहीं आती। यदि लड़की कुछ बड़ी हो जाए तो उसके विवाह की चिन्ता सब को दिन-रात सताती है—न खाने-पीने का सुख, न सोने-बैठने का आराम, न घूमने-फिरने का आनन्द! चौबीसों घंटे 'लड़के' की 'तलाश' होती रहती है। लड़के मिलने भी आजकल कौन-से आसान हैं! जिस लड़के से भी बात करो वह पढ़ी-लिखी लड़की माँगता है। बस, इसीलिये हम लड़कियों को पढ़ाते हैं—ताकि उनका रिश्ता होने में कठिनाई न हो। या इस तरह भी होता है कि यदि लड़की का रिश्ता पहले कहीं हुआ-हुआ हो और वह लड़का बहुत पढ़ जाए या किसी अच्छी नौकरी पर लग जाए तो लड़की के मां-बाप को चिन्ता हो जाती है कि कहीं ऐसा न हो कि लड़की के कम पढ़ी या अनपढ़ होने के कारण लड़का रिश्ता छोड़ दे। लड़के के इस सम्भावित एतराज़ को दूर करने के लिये लड़की के मां-बाप उसे पढ़ाने के लिये विवश हो जाते हैं।

आजकल लड़कियों में हम विद्याध्ययन का जितना चाव देख रहे हैं वह मुख्यतया देखा-देखी है। एक लड़की को शिक्षा प्राप्त

करते देखकर दूसरी अपने मां-बाप पर ज़ोर देकर कहती है कि वह भी पढ़ेगी। यदि गली की कुछ लड़कियां यूनिवर्सिटी की किसी परीक्षा में प्राइवेट उम्मीदवार के तौर पर बैठती हैं तो अन्य लड़कियों में भी यूनिवर्सिटी की परीक्षा में बैठने की रीस पैदा होती है। किसी लड़की की कोई सहेली या रिश्तेदार लड़की कोई परीक्षा पास कर ले तो वह भी परीक्षा पास करने के लिये लालायित हो उठती है।

परन्तु सब लड़कियां केवल रीस के कारण ही नहीं पढ़तीं। कुछ लड़कियां इसलिये भी उच्च शिक्षा प्राप्त करती हैं कि अपना निर्वाह स्वयं कर सकें और दूसरों के आधीन न रहें। आजकल यह लहर संसार भर में चल रही है कि स्त्रियां पुरुषों की कैद से निकलने का प्रयत्न कर रही हैं और इसलिये वे विद्या प्राप्त कर रही हैं ताकि स्वतंत्र रूप से अपनी रोटी कमा सकें। ऐसी स्त्रियां आम तौर पर विवाह बहुत कम करती हैं और जो करती भी हैं उनका वैवाहिक जीवन अधिकतर करके सुखी नहीं होता।

विद्या प्राप्त करने वाली स्त्रियों की एक और श्रेणी भी है जो बेचारी दुर्भाग्य की मारी विद्या प्राप्त करती हैं। ये हैं बेचारी विधवाएं। किसी स्त्री के विधवा होने पर उसके सगे-सम्बन्धी उसे इस उद्देश्य से थोड़ा-बहुत लिखा-पढ़ा देते हैं कि वह पढ़कर किसी स्कूल में अध्यापिका हो जाएगी और अपना तथा अपने बच्चों का पेट पाल सकेगी। देखने में आता है कि कई विधवाएं अच्छी पढ़-लिख जाती हैं और अपने निर्वाह का समुचित प्रबंध कर लेती हैं।

विद्या प्राप्त करने वाली लड़कियों की दिनों-दिन बढ़ती हुई श्रेणी में अधिकांश भाग इन चार श्रेणियों का है—एक तो वे जिन्हें मां-बाप अच्छा रिश्ता करने के निमित्त पढ़ाते हैं; दूसरे वे जो दूसरों की देखा-देखी पढ़ती हैं; तीसरे वे जो नए युग के प्रभाव के कारण पुरुषों की क़ैद और पराधीनता की बेड़ियों से छूटने के लिये पढ़ती हैं; और चौथी वे जो दुर्भाग्य से अपनी युवावस्था में ही विधवा हो गई हैं। इन चारों श्रेणियों को छोड़कर बहुत कम लड़कियां ऐसी रह जाती हैं जिन्हें विद्या-प्राप्ति का वास्तविक शौक़ होता है और जो उच्च शिक्षा केवल ज्ञान उपार्जन करने के निमित्त प्राप्त करती हैं। हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि उपरोक्त चारों श्रेणियों में हमें विदुषी नारियां नहीं मिलतीं। उनमें से कई बहुत अच्छी विद्या प्राप्त कर लेती हैं। हम तो यहां केवल स्त्री-शिक्षा के विभिन्न मन्तव्यों पर विचार कर रहे हैं। वैसे लड़के भी कौनसे ज्ञान-प्राप्ति की रुचि को पूरा करने के उद्देश्य से पढ़ाए जाते हैं। विद्या पढ़ने से अधिकांश लड़कों का तात्पर्य नौकरी प्राप्त करना होता है। परन्तु हम यहां स्त्री-शिक्षा की समस्या पर केवल वहां तक विचार कर रहे हैं जहां तक इसका हमारे सामाजिक जीवन के साथ सम्बन्ध है।

देखना यह है कि वर्तमान स्त्री-शिक्षा ने स्त्री-जाति में क्या-क्या परिवर्तन किये हैं और उनका हमारे सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है। आम तौर पर कहा-सुना जाता है कि पढ़ी हुई लड़कियां 'खराब' हो जाती हैं, वे विवाह करना पसन्द नहीं

करतीं और जिनका बस चल जाए वे करती भी नहीं, वे घर का धन्धा करने से घबराती और काम-काज से घृणा करती हैं, बच्चों को नहीं सम्भालतीं, फैशन की पुजारिनें बन जाती हैं, सैर, तमाशों, सिनेमाओं में समय गंवाती फिरती हैं, फ़िजूल-ख़र्च हो जाती हैं, उनमें बड़ा दम्भ और अकड़ पैदा हो जाती है, मां-बाप और सास-ससुर-आदि का आदर सम्मान नहीं करतीं, हरेक के साथ खिड़-खिड़ हँसती और खुले तौर पर बात करती हैं, बड़ी झगड़ालू हो जाती हैं, कहना नहीं मानतीं, उनमें लाज-लज्जा बिल्कुल नहीं रहती, सबके सामने ही पति से खुले तौर पर बात करती हैं और उसकी बांह में बांह डालकर सैर करने निकल जाती हैं, किसी आए-गए की परवाह नहीं करतीं, सगे-सम्बन्धियों के साथ उचित व्यवहार करना और रीति-रिवाज के अनुसार लेना-देना उन्हें नहीं आता, मुंहकान जाना और सोग मनाना व स्यापा करना उन्हें नहीं आता, कुर्सी-मेज़ों के बिना वे बैठ नहीं सकतीं, अपने धर्म-कर्म का इन्हें तनिक भी ख्याल नहीं, पूर्वजों के सब रीति रिवाज ये छोड़ देती हैं, साधु, सन्त, महात्माओं, गुरुओं में इन्हें श्रद्धा नहीं, मन्दिर आदि में जाने का इन्हें ज़रा भी चाव नहीं, इत्यादि कई प्रकार के आक्षेप आजकल पढ़ी-लिखी लड़कियों पर लगाए जाते हैं। कहा यह जाता है कि जो लड़कियां स्कूल-कालिजों में पढ़ती हैं और विशेष करके शहरों में—उनमें ये सब बातें पाई जाती हैं। इसीलिये, उन लोगों के अनुसार, जो मां-बाप समझदार होते हैं वे अपनी लड़कियों को चौथी-पांचवीं तक पढ़ाकर स्कूल से उठा

लेते हैं और फिर उन्हें घर पर पढ़ाकर 'प्राइवेट' परीक्षा दिलाते हैं।

उपरोक्त आक्षेपों में से कितने सारयुक्त हैं और कितने निस्सार, इस पर यहाँ अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इस बात से कोई व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता कि वर्तमान स्त्री-शिक्षा ने हमारे घरेलू और सामाजिक जीवन में कोई सुधार नहीं किया है। इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि अधिक पढ़ी-लिखी लड़कियाँ भाई-चारे और पारिवारिक सम्बन्धों को त्याग देती हैं, और दूसरी बात यह है कि या तो वे विवाह करती ही नहीं, या करती हैं तो उनमें से अधिकांश की पति से नहीं बनती। उच्च-शिक्षित बहुत कम ऐसी लड़कियाँ होती हैं जिनका घरेलू जीवन सुखी होता है। शेष रही कम पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ। उनका सामाजिक और कौटुम्बिक जीवन वैसा ही होता है जैसा साधारण अनपढ़ स्त्रियों का। उन बेचारियों को न तो घर के काम-धन्धों से अवकाश मिलता है, और न वे कुछ आगे पढ़-लिख सकती हैं, बस, चिट्ठी-चपाठी वे अवश्य पढ़ लेती हैं। अन्य कोई अन्तर उनके घरेलू एवं सामाजिक जीवन में दिखाई नहीं पड़ता।

वास्तविक बात यह है कि हमारी आधुनिक शिक्षा-पद्धति हमारे सामाजिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। हम लोग लड़कों को इसलिये पढ़ाते हैं कि वे रोज़गार के योग्य हो जावें। और लड़कियों को इसलिये पढ़ाते हैं कि उनका रिश्ता करने में हमें

सुविधा हो जावे। हमारे स्कूल-कालिजों की पाठ्य-प्रणाली ऐसी है कि उसके द्वारा न लड़कों को और न ही लड़कियों को अपने-अपने कामों और कर्तव्यों का ज्ञान होता है। लड़के पढ़ते-लिखते कुछ हैं—उन्हें सिर-खपाई कई विषयों में करनी पड़ती है—परन्तु इन विषयों में से कोई भी उनके काम नहीं आता। इसी प्रकार लड़कियां स्कूलों, कालिजों में जिन विषयों में सिर खपाती हैं उनका उपयोग व्यावहारिक जीवन में कुछ भी नहीं होता। जिन बातों से उन्हें अपने जीवन में दो-चार होना पड़ता है उनके सम्बन्ध में उन्हें कोई शिक्षा नहीं दी जाती। कितनी ही उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी जीवन-क्षेत्र में पाँव रखते समय बिल्कुल अल्हड़ होती हैं। यदि उन्हें आगे चलकर बच्चे ही सम्भालने हैं तो क्यों न उन्हें तत्सम्बन्धी शिक्षा दी जाए। यदि उनके हाथों में घर का प्रबन्ध रहना है तो उन्हें क्यों न वह शिक्षा दी जावे जो घर संवारने, सुधारने और उसकी देख-रेख करने में उनकी सहायक हो सके। यदि पढ़ी-लिखी लड़कियों को भी वैसा ही दुखमय जीवन बिताना पड़े जैसा अनपढ़ लड़कियां बिताती हैं तो फिर ऐसी विद्या से क्या लाभ ? सब से पहले तो हमें यह विचार करना है कि हमारे सामाजिक और पारिवारिक जीवन में स्त्री को क्या स्थान प्राप्त हो। फिर उसके अनुसार हमारी स्त्री-शिक्षा की पद्धति और पाठ्य-प्रणाली निश्चित होनी चाहिये। विद्या-प्राप्ति स्त्रियों के लिये उतनी ही आवश्यक है जितनी पुरुषों के लिये, परन्तु दोनों की शिक्षा उनके कार्यों, कर्तव्यों और आवश्यकताओं के अनुसार होनी

चाहिये। जिन्हें ऊँची शिक्षा प्राप्त करके साहित्य अथवा किसी अन्य क्षेत्र में विशेषता प्राप्त करनी है, वे प्रसन्नतापूर्वक ऐसा करें, शेष लड़कियों को वही शिक्षा मिलनी चाहिये जिसका सम्बन्ध उनके दैनिक जीवन और उसकी समस्याओं से हो। मूल आवश्यकता इस बात की है कि स्त्री के घरेलू और सामाजिक जीवन को सुखी बनाया जाए। इसलिये उन्हें वही शिक्षा मिलनी चाहिये जो उनके घरेलू और सामाजिक जीवन को सुखमय बनाने में सहायक हो और वे अपने घरों को सुखपूर्ण बना सकें।

सामाजिक सुधार और स्त्रियों का कर्तव्य

स्त्रियां सुधार-कार्य किस तरह कर सकती हैं? उनसे यदि बात करो तो वे कहती हैं कि हमारे सामाजिक ढांचे में स्त्रियों की इतनी दुरवस्था हो गई है कि वे कुछ करने योग्य रह ही नहीं गई हैं। सैंकड़ों वर्षों की दासता और पराधीनता ने उन्हें इतना निर्बल, असहाय बना दिया है कि वे अपने पांवों पर खड़ी हो ही नहीं सकतीं। ऐसी अवस्था में वे सुधार करें तो किस तरह करें। इसके अतिरिक्त वे कह देती हैं कि लड़के बहुतेरा-कुछ सुधार कर सकते हैं, लड़कियों के हाथ में तो कुछ भी नहीं है। विवाह-सम्बन्धी मामलों में आजकल लड़कों से तो थोड़ा-बहुत पूछ भी लिया जाता है, परन्तु लड़कियों को तो कोई गिनता ही नहीं। लड़के शोर मचाकर, हाय-तौबा करके, अपनी कोई-न-कोई बात मनवा भी लेते हैं, परन्तु लड़कियां तो बोल ही नहीं सकतीं। वे तो बेचारी अनबोल हैं, उन्हें तो गौओं की भांति दान करके दे दिया जाता है। उनसे कभी कोई नहीं पूछता कि तुम्हारा विवाह करें या नहीं। न ही किसी जगह उनका रिश्ता करते समय उनकी अनुमति ली जाती है। वे अपने विवाह के सम्बन्ध में कोई बातचीत नहीं कर सकतीं। एक कँवारी लड़की के लिए यह घोर निर्लज्जता की बात समझी जाती है कि वह अपने विवाह

के सम्बन्ध में कोई बात करे। सारांश यह है कि स्त्री-जाति पूरी तरह पराधीन है, उसे सोचने की भी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है।

जब तक स्त्रियां सामाजिक-सुधार की लहर में बहने के लिये स्वयं तैयार न होंगी, तब तक उनका उद्धार नहीं हो सकता। माना कि पुरुष के अत्याचारों और अनाचारों ने स्त्री को इतना दबा और गिरा दिया है कि उनके लिये उठना और अपने पांव पर खड़ा होना असम्भव दिखाई देता है। परन्तु हम उनसे पूछते हैं कि क्या वे उस शुभ दिन की आशा और प्रतीक्षा में बैठी हैं जब सारे पुरुष हाथ जोड़कर उनसे विननी करेंगे कि आओ, स्वाधीनता ले लो और जो-जो अधिकार तुम्हें चाहिएँ, मांग लो। ऐसा न कभी हुआ है, न कभी होगा। संसार में जिस देश अथवा जाति में स्त्रियां आगे बढ़ी हैं, स्वयं अपने साहस और प्रयत्नों से बढ़ी हैं। पुरुष कभी भी नारी का हाथ पकड़कर उसे ऊपर नहीं खींचेगा; नारी जब भी उठेगी, अपने साहस और आत्म-बल से ऊपर उठेगी।

किसी भी सामाजिक कुरीति को ले लो—जब तक उसे दूर करने में स्त्री जाति सहयोग नहीं देगी वह दूर नहीं होगी। लेन-देन के बुरे रिवाजों को लीजिए, जब तक स्त्रियां इन्हें दूर करने का दृढ़ संकल्प नहीं करेंगी ये रिवाज हमारा पीछा नहीं छोड़ेंगे। यदि पर्दे की प्रथा को दूर करने का प्रश्न है तो भी स्त्रियों के ऊपर यह बात निर्भर है। हम भले ही पर्दा-प्रथा के विरुद्ध कितने ही

लेख लिखें, कितने ही व्याख्यान दें और कितना ही ज़ोर लगावें, किन्तु यह प्रथा हटेगी उस दिन जिस दिन नारी इसका बहिष्कार करना चाहेगी। अन्य किसी सामाजिक कुरीति को ले लो—स्त्रियों की पूर्ण सहायता और सहयोग के बिना कोई भी कुरीति एवं बुरी प्रथा दूर नहीं हो सकती। हमारी सारी सामाजिक रीति-प्रथाओं की रक्षा करने वाली नारी ही हैं। पुरुष फिर भी समय की रौ के अनुसार अपनी दिशा बदल लेता है। परन्तु हमारी भारतीय नारी समय की रौ के सामने भी अपने स्थान पर अडिग, अटल खड़ी रहती है। यह गुण भी है और अवगुण भी। समय की नित्य-परिवर्तनशील हवा का तिरस्कार करके अपने नियमों पर अटल रहना प्रशंसनीय गुण है। परन्तु एक सीमा के बाद यह गुण अवगुण बन जाता है। क्योंकि बदली हुई परिस्थिति में कई पुराने रीति-रिवाज हानिकारक हो जाते हैं, उन्हें न छोड़ने से समाज रोगी हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में पुराने रिवाजों को पकड़े रखना एक अवगुण हो जाता है।

हमारी सामाजिक रीति-प्रथाओं का पालन करने में हमारी स्त्रियां और भी अधिक कट्टर हैं। यदि हम उनमें सुधार करना चाहते हैं तो केवल स्त्रियों की सहायता और सहयोग से ही कर सकते हैं। इसलिए हमें सामाजिक-सुधार का आंदोलन अधिकतर स्त्रियों के बीच में ही चलाना चाहिए।

अब प्रश्न आता है कि स्त्रियां सुधार किस तरह करें? घर में बड़ी-बूढ़ियों की ही चलती है, लड़कियों अथवा बहुओं को कोई

पूछता ही नहीं। यदि कोई लड़की बोलने का साहस कर बैठे तो बड़ी-बूढ़ियां तुरन्त घर सिर पर उठा लेती हैं—"हाय! हाय! आजकल की छोकरियों को कैसी हवा लग गई है? इनका ढीठपन तो देखो, पुरखाओं के चलाए हुए रीति-रिवाजों में दोष निकालने लगी हैं। कैसा बुरा समय आ गया है! घोर कलियुग आ गया! कलियुग!!" इस प्रकार की बातों का यह परिणाम होता है कि जो लड़कियां कुछ अधिक शिक्षा प्राप्त कर लेती हैं वे अपने पति को लेकर अलग हो जाती हैं। यही नहीं, इन ऊटपटांग व्यंगों से तंग आकर वे बहुत से सगे-सम्बन्धियों के यहां जाना भी छोड़ देती हैं। अपने घर में वे जिस तरह चाहती हैं करती हैं। इसीलिये स्त्रियां आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियों को पसन्द नहीं करतीं और इन्हीं बड़ी बूढ़ियों की कृपा से शिक्षित लड़कियां बदनाम हो गई हैं। जो पढ़ी-लिखी लड़कियां कम साहसी होती हैं और जो बदनामी से और सगे-सम्बन्धियों से डरती हैं वे मशीन की भांति बेचारी बे-दिल बड़ी-बूढ़ियों के आदेशानुसार सब रीति-रिवाज भुगताती रहती हैं। कभी वे अपने भाग्य को रोती हैं, कभी पति से लड़ती हैं कि अमुक प्रथा का पालन नहीं करना चाहिए, अमुक कार्य नहीं करना चाहिये, परन्तु कर कुछ भी नहीं सकतीं—कोल्हू के बैल की तरह सामाजिक व्यवस्था के चक्र में फंसी रहती है।

ऐसी स्थिति में भला सुधार किस तरह हो सकता है? जो पढ़ी-लिखी लड़कियां सुधार करने की इच्छा करती हैं उन्हें या

तो सगे-सम्बन्धियों से अलग हो जाना पड़ता है, या फिर वे बदनामी के डर से चुप होकर बैठ जाती हैं। परन्तु वास्तव में ये दोनों रास्ते ग़लत हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सामाजिक सुधार करने की इच्छा रखने वाली नारियां मैदान में आवें, बदनामी का डर दिल में से निकाल दें, सगे-सम्बन्धी और गली-मुहल्ले वाले क्या कहेंगे, इस बात की ओर से आँखें बन्द कर लें, और निडरता और साहस से काम लेकर अपनी रिश्तेदार स्त्रियों, गली-मुहल्ले वालियों और सहेलियों में अपने विचारों का प्रचार करें, स्वयं अगुआ बनकर बुरे रीति-रिवाजों को त्यागें और दूसरी स्त्रियों को प्रेरित करें कि वे भी इन कुरीतियों को छोड़ दें। सुधार होगा तो इसी तरह होगा, अन्य कोई उपाय नहीं है।

अब प्रश्न यह रहा कि बेचारी कुँआरी लड़कियां क्या कर सकती हैं। इसका उत्तर शायद स्पष्ट है कि "जो कुंआरे लड़के कर सकते हैं।" माना कि लड़कियों के मार्ग में कठिनाइयाँ और बाधाएँ बहुत हैं, परन्तु, यह बात स्पष्ट है कि इन कठिनाइयों और बाधाओं को वे स्वयं ही दूर कर सकती हैं। बस, थोड़ा 'ख़राब' और 'बुरी' बनने की आवश्यकता है। आज से कुछ वर्ष पूर्व लड़के भी अपने विवाह के सम्बन्ध में बोल नहीं सकते थे (और आज भी वे कौनसा बहुत हस्ताक्षेप कर सकते हैं!), किन्तु अब स्थिति धीरे-धीरे बदल रही है। इसी प्रकार लड़कियों को भी 'निर्लज्ज' 'बेहया' और 'कलजुगी' बनकर अपने सगे-सम्बन्धियों और माँ बाप को मुँहफट बनकर साफ़-साफ़ बातें कहनी पड़ेंगी

और अपनी उचित माँगों के लिये संघर्ष करना पड़ेगा। बिना इस तरह किये कुछ नहीं हो सकेगा। विद्रोह किये बिना किसी दबे हुए व्यक्ति या समाज या देश को आज तक कभी कुछ नहीं मिला है।

कई बहनें अपने घरेलू जीवन की विषमताओं से दुखी होकर और सगे-सम्बन्धियों के अनुचित व्यवहार से तंग आकर आत्म-हत्या कर लेती हैं। इससे अधिक ग़लत और मूर्खतापूर्ण बात और कोई नहीं हो सकती। हमारी अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये शायद बलि की, कुर्बानी की, आवश्यकता है--जैसे कि संसार में प्रत्येक ऊँचे काम के लिये होती है—परन्तु आत्म-हत्या कुर्बानी नहीं है; यह परले दर्जे की कायरता और दुर्बलता है। आवश्यकता इस बात की है कि नारी साहस और दृढ़ता से काम लेकर सामाजिक सुधार के क्षेत्र में डटकर खड़ी हो जाए। क्षेत्र से अपने को हटाने या वहाँ से भागने से उसकी विजय कैसे होगी ?

भारत की स्त्री-जाति में सुधार की लहर थोड़ी थोड़ी चल पड़ी है। कमी अभी तक इस बात की है कि उनके अन्दर संगठन नहीं है। थोड़ा-बहुत संगठन है तो वह उच्च-वर्ग की महिलाओं में है—और वह भी केवल बड़े-बड़े शहरों में। स्त्रियों में संगठन की बड़ी भारी आवश्यकता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि संगठित होने तक वे कोई सुधार-कार्य बिल्कुल ही न करें। स्त्रियों और लड़कियों को चाहिये कि वे अपने-अपने घरों में सुधार प्रारम्भ कर दें, और कष्टों, अत्याचारों और बदनामी की परवाह न करें और धीरे-धीरे अपना संगठन बनाएं।

तीसरा भाग

घरेलू जीवन

१. बच्चे
२. सफ़ाई
३. बड़ों का आदर
४. समय का मूल्य
५. खाने-पीने का ढंग
६. घरों का परस्पर जीवन
७. आदर्श-घर

घर एक विद्यालय है जिसमें बच्चे, जवान, बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब जीवन की कला सीखते हैं।

घर एक ऐसा केन्द्र है जहां जीवन-संघर्ष के लिये व्यक्ति को तैयार किया जाता है।

घर एक ऐसा स्थान है जहां हमारी समझ और हमारे धैर्य की परीक्षा होती रहती है।

घर एक ऐसी प्रयोगशाला (लैबॉरेट्री) है जहां मानव-जीवन के प्रयोग (तजुर्बे) किये जाते हैं।

घर एक फुलवाड़ी है जिसमें भांति-भांति के फूल उगते हैं, किन्तु खिलकर मुरझा जाना ही उनका जीवन नहीं है—वे सदा खिले रहने के लिये, सदा सुगन्धि देने, सुगन्धि फैलाने के लिये खिलते हैं।

घर के जीवन का यही आदर्श है, यही होना चाहिये।

बच्चे

बच्चा मां-बाप का खिलौना—मां के हृदय-रूपी आकाश का चांद, बाप का मन-बहलावा, मां का जीवन-धन, प्राण-प्यारा, बाप के जीवन का सहारा, घर की ज्योति और बाहर की बहार, मानव-जाति का पिता और देश का भावी कर्णधार—बच्चा यह सब कुछ—बल्कि इससे भी कुछ अधिक है। किन्तु अफ़सोस! हमने बच्चों का ठीक मूल्य नहीं आंका, इनका उचित महत्व नहीं समझा। हमने बच्चों को खाण्ड के खिलौने ही समझ लिया है, हम उन्हें देख-देखकर प्रसन्न होते हैं, उनकी तोतली बातें सुनकर हम ज़ोर-ज़ोर से हँसते हैं, उनकी खुशी को अपनी खुशी समझते हैं, उनके दुःख-तकलीफ़ को अपने दुःख-तकलीफ़ समझते हैं; परन्तु फिर भी हमें बच्चे सम्भालने की विद्या और उनका ठीक लालन-पालन करने की कला नहीं आई। मां को बच्चा बहुत प्यारा होता है—अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा होता है—बच्चे की मृत्यु मां के लिये एक असह्य वेदना, एक महाभयंकर आघात होता है। बच्चा मां के भविष्य की आशा है, यह सब कुछ होते हुये भी हमारी माताओं को बच्चे पालने की समझ नहीं है। माता बच्चे को प्यार अवश्य करती है, किन्तु उसे प्यार करने का ठीक ढंग नहीं आता। माता का बच्चे के साथ मोह है, परन्तु .....।

आप अपने ही घर को देखिए—हम बच्चों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं ? हम चाहते हैं कि बच्चे कभी रोते न दिखाई दें, क्योंकि बाल-बच्चे हंसते-खेलते ही अच्छे लगते हैं। परन्तु यह सच है कि हम स्वयं ही बालकों को रुलाते हैं। हम उन्हें नहलाते हैं तो बांध-जूड़ कर और थप्पड़ लगाकर, अन्यथा वे बस में ही नहीं आते, न ही वे नहाने का नाम लेते हैं। उन्हें कपड़े पहनाने होते हैं तो भी मार-पीटकर पहनाए जाते हैं। जो दूध पिलाना हो तो वह भी मार-पीटकर पिलाया जाता है—वे दूध भी स्वयं नहीं पीते। यदि बच्चे को चुप कराना हो तो भी मार-पीट, धमकी और झिड़कियों के बिना उसे चुप नहीं कराया जाता। जब उसे सुलाना हो तो उसे लोरियां दो, थपकियां दो, परन्तु जब तक उसे हौवे और बिल्ली आदि का डर न दिखाओ तब तक वह सोता ही नहीं। यदि वह आपको काम नहीं करने देता और तंग करता है तो जब तक आप उसे मार-पीटकर चारपाई पर पटककर उसे सुला न दें तब तक आप कोई काम नहीं कर सकते। यदि वह आपके पीछे-पीछे लगा हुआ है, आपका पीछा नहीं छोड़ रहा, तो जब तक आप उसे 'मांगने वाले' का डर न दिखाओ और यदि आप अधिक परेशान हो उठे हैं तो उसे दो-चार थप्पड़ न लगाओ तो वह आपका पीछा नहीं छोड़ता। यदि वह किसी अन्य बालक की रीस करके कोई वस्तु माँगे तो झिड़ककर बिठा दो, नहीं तो बड़ा तंग करेगा। यदि बच्चे कहना नहीं मानते तो डंडा लेकर दो-चार लगा दो, अपने आप मान जायेंगे। यदि वे

छाबड़ी वाले को देखकर या कुलफ़ी या दही-बड़े वाले को देखकर चीज़ मांगें और आप उन्हें न देना चाहें और वे बार बार मांगें तो बेशक उनके चांटे लगाओ। जो वे चारपाई पर ही मल-मूत्र त्याग दें तो उठाते ही उनकी ख़बर लो। यदि वे काम न करें तो डंडा, सोटा, चिमटा जो कुछ हाथ लगे, उससे उनकी हड्डियां तोड़ डालो। यदि बच्चा न पढ़े तो उसे स्वयं भी मारो और उसके अध्यापक से भी उसे पिटवाओ। यदि वह सारा दिन बाहर रहे और बार-बार बुलाने पर भी घर न आवे तो उसे बलपूर्वक पकड़ कर घसीटकर घर ले आओ और 'अन्धेरी' कोठरी में बन्द कर दो। यदि वह घर में सारा दिन पड़ा रीं-रीं करता है और बाहर गली मुहल्ले में खेलने नहीं जाता तो बलपूर्वक उसे बाहर निकाल कर मकान का द्वार बन्द कर लो। यदि वह सारा दिन रोटी-पानी ही मांगता है तो परवाह न करो, जब तुम्हें अवकाश मिले तब दे दो। यदि वह मिट्टी-धूल में खेल कर अपने कपड़े गन्दे कर लाए तो मार-मार कर मुंह लाल कर दो।

यही कुछ करते हैं हम बच्चों के साथ! ये हैं बच्चों को शिक्षित करने और सुधारने के हमारे ढंग। यह है हमारी माताओं की बच्चों को सम्भालने और पालने-पोसने की प्रणाली, जिस पर वे गर्व करती हैं। क्या हम इन उपायों और तरीक़ों से बच्चों को उनके भावी जीवन के लिये तैयार कर रहे हैं? क्या इसी तरह हम बच्चों को राष्ट्र और देश के भावी नेता बनने के लिये तैयार कर रहे हैं? क्या हम इसी तरह अपने बेटे-बेटियों को बाल-बच्चे

सम्भालने का ढंग सिखा रहे हैं ? क्या हम इन्हीं बच्चों पर इतनी आशाएं लगाए बैठे हैं ? क्या ये अपने माता-पिता की आज्ञाकारी पुत्र-पुत्रियां होंगी ? क्या यही बालक बड़े होकर माता-पिता को सेवा करेंगे और कमा कर उन्हें खिलाएंगे ?

अफ़सोस ! हमने बालकों के अमूल्य जीवन का उचित मूल्य नहीं समझा और हमें अब तक इनको सुयोग्य बनाने का ढंग नहीं आया। हमने उन्हें केवल अपने दिल बहलाने का सामान और घर की रोशनी समझ छोड़ा, कभी हमने यह नहीं सोचा कि ये बच्चे देश के वैभव हैं, राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति हैं। जिन बालकों का घरेलू जीवन माँ-बाप से झिड़कियाँ तथा मार खाकर बीतता है, उन्होंने बड़े होकर क्या करना है ? जिन्हें सदा मां-बाप के शासन में रहना है और जो उनकी आज्ञा के बिना कुछ नहीं कर सकते, बड़े होकर उनमें आत्म-विश्वास का मान कैसे उत्पन्न हो सकता है ? जिन्हें घर में अपनी समझ और बुद्धि प्रयोग में लाने की आज्ञा नहीं वे बड़े होकर क्या काम कर सकते हैं। जो अपने घर में अपना व्यक्तित्व प्रकट न कर सके उनमें यह साहस कैसे पैदा होगा कि वे सत्य और न्याय के लिये मर मिटें। जिनको हमने घर में आत्म-सन्मान नहीं सिखाया वे बाहर अपने आत्म-सन्मान की किस प्रकार रक्षा करेंगे ? जिनका हमने घर में आदर नहीं किया, बाहर उनका किसने आदर करना है ? जिन्होंने घर में स्वाधीनता नहीं देखी वे बाहर स्वाधीनता का क्या आनन्द उठा सकते हैं ? जो घर में हर समय 'ख़राब' और 'नालायक़' हैं वे

बाहर कब अच्छे और 'लायक़' हो सकते हैं ? जिन्होंने छोटी अवस्था में मां-बाप के अन्याय सहे हैं वे कल को बड़े होकर अपने बच्चों के साथ भी यही कुछ करेंगे। जिन लड़कियों ने अपनी माताओं से यही कुछ सीखा है वे माताएँ बनकर वही कुछ करेंगी।..... यह चक्र इसी तरह चलता रहेगा।

यदि हम अपनी, अपने देश एवं राष्ट्र की, नहीं नहीं, सारी मनुष्य-जाति की उन्नति और मुक्ति चाहते हैं तो हमें अपने घरों का सुधार करना चाहिये, अपने बच्चों का जीवन सुधारना चाहिये और उन्हें हर तरह योग्य बनाना चाहिये। हमारी भलाई इसी में है।

आज मां की गोदी में खेलने वाला शिशु कल देश का नेता बनेगा; राष्ट्र का गौरव कहलाएगा; मनुष्य-जाति का चमकता सितारा होगा। राष्ट्र को, देश को, मनुष्य-जाति को उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं; और सबसे बढ़कर उसके माता-पिता की समस्त आशाओं का वह केन्द्र है। संसार को सुखी बनाने वाले अपने परिश्रम का फल स्वयं कम ही खाते हैं। आज का बच्चा ही बड़ा होकर संसार की उन्नति से लाभ उठाएगा। हमारी अपेक्षा आगे आने वाली पीढ़ियां वैज्ञानिक उन्नति और सुख-सुविधाओं का अधिक उपभोग करेंगी। वर्तमान समय में सीखी बातों का लाभ हमारे पुत्र-पुत्रियाँ, पौत्र-पौत्रियाँ आदि ही उठाएंगे। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या हम उन्हें इसके योग्य बना रहे हैं ? क्या आज की बदलती दुनियां के लिये हम उन्हें तैयार कर रहे हैं ? क्या हम

इस युग की आवश्यकता के अनुसार उन्हें शिक्षा दे रहे हैं ?

यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि बच्चों के पालन-पोषण की प्रणाली वही है जो शताब्दियों से मां-बाप प्रयुक्त करते आए हैं, तो ऐसा कहना हमारी भूल है। मां-बाप बदलें या न बदलें, किन्तु युग तो बड़ी तेज़ी से बदल रहा है। संसार की प्रगति को कोई नहीं रोक सकता। आज दुनियां कहीं से कहीं पहुँच गई है। समझदारी इसी में है कि हम इस परिवर्तन को समझें और इसके अनुसार अपने को बदलें। बच्चों के सम्बन्ध में उन्नत देशों में बहुत-कुछ हो रहा है, और इस विषय पर इतना साहित्य लिखा जा चुका है कि उसे देखकर असीम आश्चर्य होता है कि अनुसन्धान-कर्ताओं ने क्या-क्या कर दिखाया है। अमरीका, इंगलैंड आदि देशों में माता-पिताओं की बहुत-सी कमेटियां बनी हुई हैं जिनमें माता-पिता मिलकर सांझी समस्याओं को हल करने का यत्न करते हैं और अपनी तथा अपने बच्चों की कठिनाइयों को समझने का प्रयत्न करते हैं। अगणित समाचार-पत्र और पत्रिकायें केवल बच्चों की शिक्षा और पालन-पोषण के विषय को लेकर प्रकाशित की जा रही हैं।

उलझे और समस्या-युक्त बच्चों की समस्याओं और कठिनाइयों को समझने के लिये विशेष प्रकार की संस्थाएँ स्थापित हैं। उनमें बच्चों की शरारत करने की, झूठ बोलने की, चोरी करने की तथा अन्य सब प्रकार की बुरी आदतों की छान-बीन और खोज की जाती है। सारांश यह है कि बच्चों की हर तरह से परख की

जाती है—प्रयत्न यह किया जाता है कि बच्चे का जीवन घर में, स्कूल में तथा संसार में सुखी तथा लाभदायक बनाया जाए। अमरीका की सरकार हर साल लाखों करोड़ों रुपये केवल इस बात पर खर्च करती है कि बच्चों की शिक्षा और पालन-पोषण सम्बन्धी आवश्यक २ बातें, सुझाव और नए अनुसन्धान, छोटी २ पुस्तिकाओं के रूप में अमरीकी माताओं तक मुफ़्त पहुँचाई जाएं। धनी और उदार महानुभाव लाखों करोड़ों रुपये ऐसे ट्रस्ट स्थापित करने के लिये दान देते हैं—जिनके द्वारा बच्चों के सम्बन्ध में खोज की जावे और ज़रूरतमन्द बालकों को उचित सहायता प्रदान की जावे। क्या वे लोग पागल हो गए हैं जो इन बातों पर करोड़ों रुपया नष्ट कर रहे हैं, या हम लोग मूर्ख हैं जो इन बातों की परवाह ही नहीं करते। हमारे लखपति और करोड़पति यदि दान करेंगे भी तो मन्दिरों और धर्मशालाओं के विशाल भवन खड़ा करने के लिये ही। ऐसे कामों की ओर कोई ध्यान भी नहीं देता—ध्यान दें भी कैसे—जब उन्हें इस बात का ज्ञान ही नहीं है कि इस विषय पर अनुसन्धान-कर्ताओं ने क्या-क्या कर दिखाया है। वास्तव में हमें इस बात का चाव ही नहीं है कि हम बच्चों की कठिनाइयों और समस्याओं को दूर करने के लिये प्रयत्न करें और दूसरों की इस कार्य के लिये सहायता लें। बच्चों को सम्भालने और उनके पालन-पोषण की कला में हम अपने को निपुण समझते हैं—परन्तु हमें एक ही गुर आता है—डण्डे का। हम बच्चों को मोम के खिलौने समझते हैं जिनको जिस तरह चाहा ढाल लिया। यदि चार-पाँच

बच्चों के माता-पिता से बच्चों की शिक्षा और सम्भाल के सम्बन्ध में कभी बातचीत करो तो वे हँस देते हैं। वे समझते हैं कि इस सम्बन्ध में उन्हें कुछ भी सीखने की आवश्यकता नहीं है। यदि हम अपने बच्चे की अमरीका एवं इंग्लैंड के बच्चों के साथ तुलना करके देखें तब हमारी आँखें खुलें। तब हमें पता लगेगा कि हम कितने पानी में हैं। हमारी शिक्षा और शिशु-पालन-कला के जीते-जागते उदाहरण आजकल के भारतवासी हैं, इनकी तुलना अन्य देशों के लोगों से करके देखिये। हमारी पालन-पोषण की रीति और शिक्षा आदि में क्या त्रुटियाँ हैं? हम उन्हें दूर करने के लिये क्या कर रहे हैं? क्या हम आने वाली पीढ़ी को अपने से अधिक योग्य, अधिक साहसी, अधिक चरित्रवान और अधिक गुणवान बनाने का उपाय कर रहे हैं; अथवा उन्हें हर बात में अपने जैसा या अपने से भी गया बीता देखकर सन्तुष्ट और प्रसन्न हैं?

वास्तव में हमारे बच्चों को न तो घर में अपनी इच्छा के अनुसार कुछ काम करने की स्वाधीनता है और न ही स्कूल में। घरों में उन्हें माँ-बाप के शासन में रहना पड़ता है, और स्कूल में अध्यापकों की आज्ञा के अनुसार चलना पड़ता है। न माँ-बाप उनके विचारों और भावनाओं का सन्मान करते हैं, न अध्यापक लोग। बच्चों की दुनियाँ उसके काल्पनिक महल हैं। क्या ऐसी स्थिति में हम यह आशा कर सकते हैं कि बच्चे बड़े होकर स्वतन्त्रता एवं स्वाधीनता का ठीक मूल्य आँक सकेंगे। जिसे कभी स्वाधीनता मिली ही नहीं उसे स्वाधीनता का क्या पता? हमारे घरों में बच्चे छोटी से छोटी

बात भी अपनी इच्छा के अनुसार नहीं कर सकते। यदि बालक स्वयं नहाना चाहेगा तो माँ कहेगी, "नहीं, तुझे स्वयं नहाना नहीं आता।" यदि वह कप स्वयं पहनना चाहेगा तो माँ कहेगी, "छोड़ कपड़े। मैं पहना दूँगी। तुझे पहनने भी आते है ? तू तो इन्हें फाड़ डालेगा, मैले कर डालेगा।" यदि वह अपने खिलौने आदि स्वयं किसी स्थान पर सम्भाल कर रखना चाहे तो माँ-बाप तुरन्त झिड़क देते हैं और कहते हैं, "तूने कभी कोई चीज़ सम्भाल कर रखी भी है ? छोड़ दे, मैं आप ही सम्भाल कर रख दूँगी। तू तो इन्हें तोड़ डालेगा।" हम यह विश्वास रखते हैं अपने बच्चों में ! माना कि बच्चे खिलौनों को तोड़ देते हैं, कपड़ों को फाड़ देते हैं, तथा अन्य चीजों को खराब कर देते हैं, और ऐसे कामों में हाथ डालने का प्रयत्न करते हैं जो उन्हें करना नहीं आता। परन्तु हम यह भूलते हैं कि यही उनके सीखने का ढंग है। यदि हम उन्हें छोटी-छोटी बातों के करने से मना करेंगे तो बड़े होकर बड़े-बड़े कामों मे हाथ डालने का उन्हें कैसे साहस होगा ? उनका तो छोटी अवस्था में ही ऐसा स्वभाव बन जाएगा कि किसी नए और कठिन काम को करने की उनकी हिम्मत ही नहीं पड़ेगी। अत हमारा कर्तव्य है कि हम बच्चे के मित्र और सलाहकार बनें, न कि उसके शासक और शत्रु। हम चाहे कितना ही दावा करें कि हम जो कुछ करते हैं उनके भले के लिये ही करते हैं—यदि उन्हें मारते हैं तो भी उनकी भलाई के लिये- परन्तु यदि हम बच्चे के विचारों और भावनाओं को समझने का प्रयत्न करें और अपने

अन्तर में झाँक कर देखें तो हमें पता लगेगा कि वास्तविकता क्या है ? हम अपनी ओर से तो बच्चे का भला करते हैं, परन्तु वास्तव में हम उसे कायर, निरुत्साही और निरुद्यमी बना रहे हैं। जब हम बच्चे को मारते हैं तो अपनी ओर से तो हम उसकी बुरी आदत दूर करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु वास्तव में हम उसे अपने विरुद्ध कर रहे हैं और बुरी आदतों को पक्का कर रहे हैं। यदि हम बच्चे के छोटे से दिल में अच्छी तरह झाँक कर देखें तो हमें उपरोक्त बात का प्रमाण मिल जाए। मार खाने का प्रभाव एवं परिणाम मार खाने वाले के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। एक बच्चा मार खाकर कोई आदत छोड़ देता है, तो दूसरा बच्चा मार खाकर उलटा ढीठ हो जाता है, तीसरे की पहले ही यह कोशिश होती है कि वह अपना मनोवांछित काम चोरी-छुप्पे करे और न वह पकड़ा जाय और न मार खाए; चौथा मार खाकर अन्दर ही अन्दर कुढ़ता और जलता रहता है और मा-बाप को अपना शत्रु समझने लगता है। एक ही मार के ये भिन्न-भिन्न परिणाम हैं। हर एक बच्चे का अलग-अलग व्यक्तित्व होता है और उसके साथ उसी के अनुसार चलना पड़ता है। अन्यथा सदा के लिये हम बच्चे का जीवन दुखी बना देंगे। हम बच्चे को वास्तव में अपना क्रोध शान्त करने के लिये मारते हैं—हमें शांति तभी पड़ती है जब हम उसे मार-पीट लेते हैं। यह बात हमारे लिये और बच्चे के लिये बड़ी हानिकारक है। अपनी क्रोधाग्नि के लिये बच्चे को आहुति समझकर हम उसके दिल पर बड़ी

करारी चोट पहुँचाते हैं, जिसका बच्चे के स्वभाव और व्यक्तित्व पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है।

हमारा हित इसी में है कि हम बच्चों के साथ अपने व्यवहार को बदलें और उनके मनोविज्ञान, उनकी आशाओं-आकांक्षाओं, उनकी प्रवृत्तियों तथा उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समझने का प्रयत्न करें। जैसा हमारा दिल है वैसा ही बच्चे का भी है और उसके दिल पर भी हमारी तरह प्रभाव पड़ता है और प्रतिक्रिया होती है। एक छोटा सा उदाहरण ले लो। एक बच्चे को उसकी बराबर की आयु वाले बच्चों के सामने किसी बात पर लज्जित करके देखो और उस समय उसका चेहरा देखो। वह इस बात का कितना बुरा मानता है और मुँह फुला लेता है और आप से मन में बुरी तरह रुष्ट हो जाता है। उसका हृदय चिकने घड़े की भाँति नहीं होता कि पानी डाला और फिसल गया और घड़े पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसके मन पर प्रत्येक बात का प्रभाव पड़ता है और सदा के लिये लकीर खिंच जाती है। बड़े बेटे-बेटियों की माँ-बाप के साथ न निभ सकने का मुख्य कारण यही है। उनकी छोटी अवस्था में माँ-बाप का उनके प्रति व्यवहार उनके स्वभाव को एक विशेष प्रकार का बना देता है; जब वे कुछ बड़े हो जाते हैं तो उन बातों का प्रभाव इस रूप में प्रकट होता है। बचपन की ईर्ष्याएँ, इच्छाएँ, आकाँक्षाएँ, क्रोध, रोष, आदि भावनाएँ कभी न कभी अपना प्रभाव अवश्य प्रकट करती हैं—चाहे किसी भी आयु में करें।

सफ़ाई

हमारे सामाजिक जीवन के बहुत से क्षेत्रों में हमारे बहुत से सिद्धान्त देखने को तो बड़े ऊँचे हैं, परन्तु उनका पालन करने में हम बहुत गिर चुके हैं। धर्म के बड़े-बड़े सिद्धान्तों की बात तो छोड़िये, छोटी-छोटी दिनचर्या की बातों में भी हमारे वचन और कर्म में दिन-रात का अन्तर है। परन्तु यह कितनी हास्यप्रद बात है कि गिरावट और दुर्बलताएं होते हुए भी हम अपने दैनिक कामों की उन्हीं ऊंचे सिद्धान्तों की आड़ लेकर प्रशंसा किये चले जा रहे हैं—यद्यपि वे सिद्धान्त हमारे यहां केवल नाम-मात्र को ही रह गए हैं। उदाहरण के लिये हमारे सफ़ाई के नियम ले लीजिये :—

हम लोग सफ़ाई-स्वच्छता को बहुत पसन्द करते हैं। मुंह साफ़ किये बिना और स्नान किये बिना हम मुंह में कुछ भी नहीं डालते, हाथ धोये बिना किसी खाने की वस्तु को नहीं छूते, किसी के जूठे बरतनों में हम नहीं खाते-पीते, बरतन को मांजे बिना हम उसे शुद्ध नहीं मानते। इसी प्रकार के कई परहेज़ हैं जो हम स्वच्छता और शौच के लिये करते हैं। सफ़ाई रखना बड़ी अच्छी बात है; मूर्ख लोग ही गन्दे रहते हैं। परन्तु यदि ध्यानपूर्वक हम विचार करें तो हमें पता लगेगा कि हम वास्तव में कितने सफ़ाई-पसन्द हैं। स्नान करने को हमने एक धार्मिक नियम समझा हुआ

है, और शारीरिक पवित्रता के साथ-साथ हम इससे आत्मिक पवित्रता प्राप्त करना भी मान लेते हैं। परन्तु हममें से बहुत-से लोग इस प्रकार नहाते हैं कि उससे शारीरिक स्वच्छता तो हो नहीं सकती, आत्मिक स्वच्छता भले ही हो जाए। एक गन्दा सा कपड़ा कमर के चारों ओर लपेट कर और थोड़ा सा पानी लेकर हम लोग कुछ लोटे पानी शरीर पर जल्दी-जल्दी डाल लेते हैं और हाथों से ही शरीर को निचोड़ कर, या किसी मैले-कुचैले तौलिये या अंगोछे से पोंछकर कपड़े पहन लेते हैं।

अन्दर पहनने वाले कपड़े आमतौर पर मैले होते हैं, बाहर वाले थोड़े सफेद और उजले। बाहर पहनने के कपड़े चाहे हम जल्दी-जल्दी बदल लेते हों, किन्तु अन्दर वाले कपड़े हम लोग १५-१५ दिन में भी नहीं बदलते। हम कहते हैं कि अन्दर वाले कपड़े कौन देखता है? बाहर वाले कपड़े यदि मैले हों तो उन्हें सब कोई देखते हैं, इसलिये बाहर वाले कपड़ों का जल्दी-जल्दी बदलना आवश्यक है।

बिना हाथ धोये हम कुछ नहीं खाते-पीते, परन्तु अनेक बार केवल एक चुल्लू पानी से हाथ धोकर हम समझ लेते हैं कि हाथ धुल गए। और फिर हम इन 'धुले हुए' हाथों को अपनी पगड़ी की लड़, या धोती या कुर्ते-कमीज़ के छोर से पोंछ लेते हैं। कई बार हाथ पोंछने के लिये हम उस रूमाल को काम में ले आते हैं जो नाक साफ़ करने के लिये हम अपनी जेब में रखते हैं। कई बार किसी अत्यन्त मैले-कुचैले अंगोछे से हाथ पोंछ डालते हैं। सोचिये

ऐसे स्नान और ऐसे हाथ धोने से क्या लाभ ? यदि सफ़ाई इसी का नाम है तो गन्दगी किसे कहेंगे ? नहाने या हाथ धोने के बाद यदि हम शरीर और हाथों को गन्दे कपड़े से पोंछ लेते हैं तो वास्तव में सफ़ाई की बजाय हम और भी गन्दगी सहेड़ लेते हैं।

बरतनों को मांजने का भी हम बड़ा ध्यान रखते हैं। राख से उन्हें रगड़-रगड़ कर चमका देते हैं और उसके बाद झाड़-पोंछकर उन्हें रख देते हैं। परन्तु कई बार देखा जाता है कि राख चाहे कितनी भी गन्दी क्यों न हो जाए हम उसी से और बरतन मांजते रहते हैं। क्या राख ऐसी पवित्र चीज़ है जो कभी गन्दी हो ही नहीं सकती ? बरतन मांजने के लिये कई बार कपड़े का टुकड़ा अथवा चीथड़ा काम में लाया जाता है; अथवा कई बार बान (पतली रस्सी) का एक लम्बा सा टुकड़ा लेकर उसे लपेट कर गुच्छा सा बना लेते हैं और उससे बरतन मांजते हैं। परन्तु वह कपड़ा या चीथड़ा या बान का गुच्छा महीनों-महीनों काम में लाते रहते हैं। बरतन मांजकर एक बड़ी सी बालटी या भिगोने में पानी भरकर उसमें धोये जाते हैं। थोड़े से बरतन धुलने के बाद यह पानी बहुत गन्दा हो जाता है। परन्तु इसे बदला नहीं जाता, वरन् घर के सारे बीस तीस बरतन इसी में धो दिये जाते हैं। भोजन परसने के समय बरतन पोंछे जाते हैं तो भी एक काले रूमाल, गन्दे कपड़े अथवा अंगोछे से, जिससे साथ-साथ रोटियां भी पोंछी जाती हैं। हम बरतन रगड़ने और चमकाने पर बड़ा ज़ोर देते हैं, परन्तु

जिस चीज़ के साथ बरतन मांजे जाते हैं, उसकी ओर हम ध्यान ही नहीं देते।

माताएं बच्चों को जिस तरह साफ़ करती हैं उसे ले लीजिये। वे बच्चे को नहला कर उसके मैले झगले, या फ्रॉक या कमीज़ से ही उसका शरीर पोंछ डालती हैं। इसी झगले या कमीज़ से मां ने कितनी बार उस बच्चे का नाक पोंछा होगा। स्त्रियों की धोती, दुपटटे या ओढ़नी का छोर भी कई काम आता है। जब ओढ़नी या दुपट्टा ओढ़ने वाली महिला कहीं जाती है तो ओढ़नी या दुपट्टा पीछे-पीछे झाड़ू लगाता चलता है। बच्चे का नाक बह रहा हो तो उसे भी दुपट्टे के छोर से पोंछा जाता है। जब बच्चे का मुंह या हाथ धोया तो उसे भी दुपट्टे के छोर से पोंछ दिया। जब चौके में बैठी तो थाली-कटोरी भी दुपट्टे के छोर से पोंछ दी। जिनकी माताएं यह कुछ करती हैं उनको सन्तान भी तो यही कुछ सीखती है।

घरों की स्वच्छता भी हमारी अजीब तरह की है। बुहारी-झाड़ू देना हमारा नित्य का नियम है, परन्तु झाड़ू देकर कूड़ा-करकट हम या तो अपने ही मकान के बाहर मुख्य-द्वार के पास डाल देते हैं, या यदि हम ऊपर की मंज़िल में रहते हों तो ऊपर की खिड़की में से ही बाहर फेंक देते हैं। घर की सफ़ाई तो हमने करदी, किन्तु घर के बाहर हमारे द्वार पर ही कूड़े का ढेर लग जाता है जहां मक्खियां भिनभिन करती फिरती हैं। वही मक्खियां फिर हमारे घर में आ घुसती हैं और बीमारियां फैलाती हैं।

कितनी कमाल की सफ़ाई है हमारी ! हम तो वास्तव में मक्खी-मच्छरों के योग्य ख़ूराक इकट्ठी करके उसे अपने मकान के द्वार के पास या गली में रख छोड़ते हैं। सो यह तो मक्खी-मच्छरों को पालने का काम हुआ। अर्थात् बीमारी को निमन्त्रण देने की बात हुई, न कि स्वच्छता के द्वारा बीमारियों को दूर भगाने की।

जिन दो जगहों की सफ़ाई सब से अधिक आवश्यक है वे हैं स्नानालय और शौचालय। परन्तु इनकी सफ़ाई की ओर हम बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते। अब समय बहुत बदल गया है। वह युग अब नहीं रहा कि लोग जंगल या खेतों की ओर शौच-निवृत्ति के लिए जाएं और कूओं पर नहा लें। गांव में निःसंदेह अभी भी यही सिलसिला चलता है, परन्तु नगरों में—चाहे वे बड़े हों, चाहे छोटे—यह नक़शा बदल चुका है। अब तो प्रत्येक घर में स्नानालय और शौचालय की आवश्यकता होती है और इन दो जगहों के बिना किसी का भी निर्वाह नहीं हो सकता—चाहे कोई धनवान हो चाहे निर्धन। परन्तु जब हम मकान बनवाते हैं तो यह कोशिश करते हैं कि स्नानालय और शौचालय छोटे-से-छोटे और किसी कोने में या अन्धेरी जगह में बना दिये जावें। बड़े-बड़े नगरों में बड़े-बड़े भव्य भवनों में ज़ीने के नीचे जो ख़ाली जगह बच जाती है, आम तौर पर उसमें स्नानालय और शौचालय बना देते हैं। न इनमें रोशनी आती है, न हवा। स्नानालय हम इतने छोटे बनाते हैं कि एक आदमी उनमें खुलकर हाथ-पांव भी नहीं हिला सकता। शौचालय तो और भी छोटे

होते हैं। इस प्रकार के स्नानालय और शौचालय कभी अच्छी तरह साफ़ नहीं किये जा सकते। ये दोनों जगह ऐसी खुली होनी चाहियें कि इनमें हवा और धूप खूब खुलकर आ सके। जब तक हम इन दोनों जगहों की ओर उचित ध्यान नहीं देंगे, हमारी शारीरिक सफ़ाई तथा आरोग्यता कभी नहीं रह सकती।

उपरोक्त कुछेक उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमें वास्तविक सफ़ाई की विधि सीखने की कितनी भारी आवश्यकता है। हम चाहे कितना ही दावा करें कि हम बड़े सफ़ाई-पसंद हैं, (शौच को मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षणों में से एक माना है); पर वास्तव में हम शौच स्वच्छता एवं सफ़ाई रखना नहीं जानते। दो-चार उदाहरण जो ऊपर दिये गये हैं उसके नमूने हम लगभग प्रत्येक घर में देख सकते हैं। ये उदाहरण आजकल के हैं, बीते युग के नहीं। हम में से बहुतेरे लोग इन बातों को अनुभव भी करते हैं, पर हमने अपने को या अपने सम्बन्धियों और भाई-बन्दों को बदलने का साहस कभी नहीं किया। शायद हम यह समझ बैठे हैं कि दिखावे की सफ़ाई ही आवश्यक है, परन्तु यह हमारी बड़ी भारी भूल है। यह ठीक है कि उपरोक्त आदतें प्रायः माताएं ही अपनी सन्तान को सिखाती हैं और यह क्रम इसी तरह चलता रहता है, परन्तु प्रश्न यह है कि हमने माताओं की इन आदतों को बदलने का क्या उपाय किया है ?

बड़ों का आदर

बड़ों का आदर करने की हमारी प्रथाएं भी बड़ी निराली हैं। उन्हें देखकर हँसी आए बिना नहीं रह सकती। सबसे अधिक हास्यप्रद पत्नी की ओर से पति के आदर की प्रणाली है। पत्नी अपने पति का नाम नहीं बोल सकती। माना कि अपने से बड़ों का नाम लेना अच्छा नहीं होता, परन्तु यदि आवश्यकता और अवसर आ पड़े तो क्या किया जाए। स्त्री अपने पति का साधारण तौर पर नाम न ले तो चलो कोई बात नहीं, परन्तु हमने तो इस प्रथा को एक व्यर्थ का वहम, ढकोसला और जंजाल बना छोड़ा है। यह प्रथा यहां तक हास्यजनक बन चुकी है कि यदि पति के नाम के साथ मिलता-जुलता किसी नगर, आभूषण, खाद्य-पदार्थ अथवा संसार की किसी भी वस्तु का नाम होगा तो स्त्रियां उस शब्द का भी अपने मुख से उच्चारण नहीं करेंगी। यदि कोई पुरुष 'मथुरा प्रसाद' होगा और उसकी धर्मपत्नी को किसी कार्यवश मथुरा शहर का नाम बोलना पड़े तो वह कभी मुँह से 'मथुरा' नहीं कहेगी। उसे मथुरा का टिकट लेना पड़े तो बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यदि किसी पुरुष का नाम 'मूलराज' हो तो उसकी स्त्री बेचारी 'मूली' शब्द भी नहीं बोल सकती। उसे मूली खरीदनी होगी तो वह साग-भाजी वाले को

केवल इशारे से बताएगी, या 'पत्तों वाली' आदि कुछ और नाम से उसका संकेत करेगी। यदि पति का नाम 'मक्खन लाल' होगा तो पत्नी मक्खन शब्द बोलना ही छोड़ देती है। मक्खन के लिये वह 'कच्चा घी' शब्द का प्रयोग करने लगेगी। यही नहीं बल्कि यदि किसी धार्मिक भजन, शब्द आदि में उसके पति का नाम—जैसे शिव, कृष्ण, विष्णु इत्यादि आ जाए तो या तो स्त्री उस पद को पढ़ेगी ही नहीं, या मन-मन में पढ़ लेगी या उस पद की तुक ही बदल देगी। एक कहानी इस सम्बन्ध में विख्यात है। एक महिला के पति का नाम 'गुरमुख सिंह' था। वह स्त्री सिख धर्म को मानने वाली थी, इसलिये नित्य-प्रति सवेरे 'जपजी' का पाठ करती थी। जब वह 'जपजी' में 'गुरमुख नादं, गुरमुख वेदं, गुरमुख रहा समाई' वाली पंक्ति पर आती थी तो इस पद में 'गुरमुख' शब्द की जगह 'मुन्ने के पापा' शब्द बोल लेती थी।

बात यहीं पर समाप्त नहीं हो जाती। ससुर, जेठ, ननदोई, पति के चाचा-ताऊ आदि सब उसी सूची में आते हैं जिनका नाम स्त्रियां अपने मुख से नहीं बोल सकतीं और इस तरह उनका आदर करती हैं, इन सबका नाम लेना मना है।

इस नियम का पालन बड़ी कट्टरता के साथ किया जाता है। यहां तक कि यदि कोई आपत्ति आ जाए या स्त्री किसी संकट में भी घिर जाए तो भी वह पति आदि का नाम नहीं ले सकती। कई बार स्टेशनों पर ऐसी घटना घट चुकी हैं कि पति-पत्नी यदि किसी कारण बिछड़ जाएं तो पत्नी रेलवे कर्मचारियों को

या पुलिस को भी अपने पति का नाम नहीं बताती। बहुत करेगी तो वह संकेतों से काम लेकर उन्हें बताने का प्रयत्न करेगी। वे अनुमान लगा सकें तो ठीक, नहीं तो भगवान् की इच्छा! एक स्टेशन पर एक पति और पत्नी गाड़ी में चढ़े। पति उतर कर पानी लेने गया, इतने में गाड़ी चल दी। पत्नी को जिस स्टेशन पर उतरना था, वह उस पर जा उतरी। वहां टिकट-कलक्टर ने टिकट मांगा। उसने कहा 'वे' पीछे अमुक स्टेशन पर रह गए हैं। बाबू ने कहा नाम बता दो, हम तार दे देते हैं। परन्तु वह नाम कैसे बताए? उसने पहेली बुझानी शुरू की। कहने लगी, "उनका नाम उस पर है जिससे रोशनी होती है।" बाबू ने पूछा, "चन्द्र प्रकाश?" स्त्री ने कहा, "नहीं।" फिर बाबू ने पूछा, "तारा चन्द?" स्त्री ने कहा, "नहीं, जो सवेरे निकलता है।" बाबू ने कहा, "सूरज प्रकाश?" तब स्त्री ने हां भरी।

यह रोग केवल स्त्रियों में ही नहीं है। हमारे यहां के पति भी तो विलक्षण हैं। उन्हें यदि अपनी पत्नी को बुलाना हो तो वे उसका नाम लेकर नहीं पुकारेंगे। किसी और आदमी के सामने उसकी बात कहनी होगी तो कहेंगे– 'वह' कह रही थी। यदि दूसरे की समझ में न आवे तो अपने पुत्र या पुत्री का नाम लेकर कहेंगे– ओम प्रकाश की मां कह रही थी। और कुछ नहीं तो मुन्ने की या मुन्नी की मां ही कह देते हैं। या बात करने वाला कोई घनिष्ट मित्र या बराबर का व्यक्ति हो तो कहेंगे "तुम्हारी भाभी"। 'घर वाली' कह कर भी उसका वर्णन किया जाता है।

अर्थात् वह पति की सीधी-सादी 'पत्नी' या जो कुछ भी उसका नाम है न होकर और सब कुछ है अमुक की मां, अमुक की भाभी, अमुक की चाची, अमुक की ताई, अमुक की दादी . । 'पत्नी' कहने में या पत्नी का नाम लेने में हमारे पुरुषों को लाज लगती है। अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों ने पत्नी के सम्बन्ध में कहीं कुछ बात कहनी हो तो अंग्रेज़ी शब्द 'वाइफ़' कहने की प्रथा चला दी है। परन्तु कोई भी व्यक्ति सीधा शब्द 'पत्नी' या 'धर्मपत्नी' नहीं कहेगा, न ही उसका निजी नाम लेगा।

इस बात के परिणामों में से एक यह भी होता है कि कई बार छोटे बच्चों को अपने मां-बाप के नामों तक का पता नहीं होता। यदि कोई बच्चा कहीं खो जाए और उससे पूछो कि तुम्हारे पिता जी का क्या नाम है तो वह 'पापा जी' 'पिता जी' आदि कह देगा। मां का नाम बताना तो उसके लिये और भी कठिन होगा।

बड़ों के आदर की परिपाटी अभी यहीं समाप्त नहीं हो जाती। आवश्यकता पड़ने पर भी स्त्रियां अपने जेठ, ससुर, तथा पति के चाचा, ताऊ आदि से नहीं बोलतीं। उनसे घूंघट निकालना भी अनिवार्य है। यदि कभी इन में से किसी को खाना खिलाना पड़ जाए तो खाने वाले को भी परेशानी हो जाती है और खिलाने वाली को भी। यदि खाने वाला कोई चीज़ मांगे और वह समाप्त हो चुकी हो तो स्त्री बेचारी किस तरह इन्कार करे ? कई बार ऐसे अवसर पर स्त्री खाली पतीली सामने रखकर दिखा देती है; अथवा चुप रह जाती है। पुरुष भी 'बहू' से अधिक बोलना उचित नहीं

समझते। इसलिये जैसा कुछ वह खिलाती है वैसा ही वे बेचारे ख -पीकर चले जाते हैं।

'बहू' बीमार हो जाए और घर पर पति या लड़के-बाले न हों और ससुर, जेठ आदि हों तो एक भारी समस्या खड़ी हो जाती है। न 'बहू' कह सकती कि उसे क्या तकलीफ़ है, न ससुर जेठ आदि पूछ सकते। बहुत सी स्त्रियां तो डाक्टर से भी अपना हाल नहीं कहतीं।

यह भी रिवाज है कि बहुए और देवरानियां अभिवादन करने के लिये अपनी सास और जेठानियों के पांव छूती हैं। पांव छूए बिना अभिवादन पूरा नहीं होता।

क्या बड़ों का आदर-सत्कार करने के यही तरीके हैं? क्या नाम न लेने, गूंगी बने रहने, और पांव छूने में ही आदर भरा हुआ है? हमारी स्त्रियों में सास, जेठानियों आदि के प्रति जितनी वास्तविक आदर-भावना होती है उसे सब जानते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि बड़ों का आदर सच्चे दिल से किया जावे—दिखावे-मात्र के लिये नहीं। आदर-भाव दिखाने की हमारी प्रणालियां और प्रथाएं हास्य का कारण हैं। हमारी सामाजिक और पारिवारिक प्रथाएं सब सारहीन और दिखावा-मात्र रह गई हैं। पतिव्रत धर्म इन व्यर्थ के आडम्बरों में नहीं है, वह तो आत्मा की चीज़ है।

बड़ों का आदर एक और प्रकार का भी है जिसकी नींव लोभ के ऊपर स्थित है। कई लोग बड़े-बूढ़ों की सेवा इसलिये करते हैं कि जब बाबाजी या दादीजी स्वर्ग सिधारेंगे तो अपना रुपया-पैसा

आदि सेवा करने वाले को दे जाएंगे, यदि बूढ़े-बूढ़ी के पास माल-दौलत न हो तो हर कोई उन्हें उपेक्षा और तिरस्कार की दृष्टि से देखता है। एक कहानी विख्यात है कि एक बूढ़े को उसके घर वाले पूछते तक न थे, उसे कोई रोटी-टुकड़ा भी न देता था। उसको किसी ने परामर्श दिया कि एक सन्दूक़ पत्थरों आदि से भर कर भारी-सा बना लो, उस पर एक बड़ा मोटा ताला लगाकर ताली अपने पास रख लो और अपने बेटों में से किसी एक की पत्नी को जाकर कहो कि इस सन्दूक को अपने घर में रख ले। उसने इसी तरह किया। बहू ने सन्दूक़ रख लिया, बूढ़े ससुर को बड़े आदर के साथ भोजन खिलाया और उससे पति के द्वारा बड़ा नम्र निवेदन कराया कि वे भविष्य में उसी के घर में रहें। बाबाजी तुरन्त सहमत होगए। उनका शेष जीवन बड़े आनन्द और आराम से व्यतीत हुआ। जब उनका देहान्त हो गया तो अन्तिम संस्कार हो चुकने के बाद पति-पत्नी ने बड़े चाव से सन्दूक़ खोला। देखकर अवाक् रह गए। चुप रहने के अतिरिक्त अब और चारा ही क्या था।

हमारे यहां के बड़े-बूढ़ों के साथ हम यह बर्ताव करते हैं, यह हम उनका सेवा-सत्कार करते हैं। यदि उनके पास धन होता है तो सब बेटे, बहुएं तथा सगे-सम्बन्धी उनका सम्मान करते हैं, नहीं तो उन्हें कोई दो कौड़ी को भी नहीं पूछता। यह है माता-पिता की सेवा का हमारा आदर्श और उसका स्तर। क्या यह महाशोक और लज्जा की बात नहीं है कि हम लोगों में बड़ों की सेवा और आदर-सम्मान की नींव लोभ के ऊपर टिकी हुई है?

समय की पाबन्दी

समय की पाबन्दी तो हम लोग बिल्कुल ही नहीं करते । कोई सभा, कोई मीटिंग, कोई जल्सा निश्चित समय पर नहीं होता। घंटे-आध-घंटे की देर हो जाना हम बहुत साधारण बात समझते हैं। एक तो प्रबंधक लोग सारा प्रबंध करने में देर कर देते हैं, दूसरे लोगों को भी यह आदत पड़ गई है कि नियत समय से घंटा-आध-घंटा देर से जाएंगे। वे लोग कहते हैं, "देसी (या हिन्दुस्तानी) समय ही है ना।" प्रबन्धक बेचारे भी इसी विचार से अगाऊ समय बतला देते हैं कि लोग ठीक समय तक तो पहुँच ही जाएंगे। हमारे बड़े-बड़े नेता, गुणी, कलाकार, विद्वान् आदि भी इस रोग में फँसे हुए हैं। वे भी समय की पाबन्दी को कोई महत्त्व नहीं देते। व्याख्यान देने वाला एक घंटे की बजाय दो घंटे तक बोलता ही चला जाएगा। विवाहों में बरात को दोपहर का खाना दो बजे खिलाया जाएगा और रात का ११ बजे—चाहे बरातियों के पेट में चूहे दौड़ते रहें। कहा यह जायगा कि ब्याह-शादियों में तो इसी तरह हुआ करता है। परन्तु, वास्तव में यह हमारी नासमझी, बल्कि मूर्खता है। हमने समय की पाबन्दी करनी नहीं सीखी तो समझ लीजिये कि हमने सभ्यता की ओर अभी पहला भी क़दम नहीं बढ़ाया है। महात्मा गांधी एक एक मिनट तक अपने समय के

पक्के रहते थे। हमें भी इस आदर्श को अपनाना चाहिये।

घर में हम अपनी दिनचर्या में बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी किसी भी बात में समय की पाबन्दी नहीं निभाते। हमारे खाने-पीने का कोई निश्चित समय नहीं है; सोने-जागने का कोई समय नहीं, लोगों से मिलने-जुलने का भी कोई समय नहीं। सोने का हमारा कोई नियम नहीं—यदि दिन में सोएंगे तो तीन-तीन, चार-चार घंटे सोते ही रहेंगे। रात के समय किसी दिन १० बजे सो जाएंगे तो किसी दिन १ बज जाएगा। हमारी मित्रों आदि से मिलन की प्रणाली भी विचित्र है। कोई कृपालु सज्जन दोपहर जलती धूप में दो बजे मिलने आ जाएंगे, तो कोई सवेरे मुँह-अंधेरे, और कोई रात को सोने के समय। और फिर उनसे छुट-कारा भी कौन जल्दी हो जाता है? वे भी तो बेचारे घर से तंग आकर घड़ी दो घड़ी सांस लेने के लिये आपके पास आते हैं। यदि गर्मी में दोपहर को आएंगे तो आपको जगाने से नहीं चूकेंगे। यदि आपके भोजन करने के समय आ जाएंगे तो भोजन करने का स्वाद भी गया।

सारांश यह कि सज्जन-मित्र एक-दूसरे का घंटों का समय नष्ट कर देते हैं। यदि हमें आवश्यक काम भी होगा तो भी हम किसी आए हुए सज्जन से यह नहीं कह सकते कि इस समय क्षमा करें, मुझे एक आवश्यक कार्य करना है। ऐसा कहना बड़ी धृष्टता और अशिष्टता की बात समझी जाती है। यदि हम ऐसा कह दें तो आने वाला नाराज़ हो जाए। ऐसे अवसर पर हम केवल दिल में

खीझ और कुढ़कर रह जाते हैं और सोचते हैं कि कैसे असमय यह भला मानस आ गया है। शिष्टाचार के नाते, जब तक वह बैठे, तब तक हमें भी बैठना पड़ता है। कितना हानिकारक है हमारा यह 'शिष्टाचार!' और कैसी-कैसी व्यर्थ की बातों पर हम एक-दूसरे से नाराज़ हो जाते हैं। और हमारे लोकाचार कितने ग़लत हैं! उचित तो यह है कि जिसने किसी से मिलने जाना हो, उसे उसके साथ समय नियत कर लेना चाहिये। इस तरह न हमें निराश होना पड़ेगा, न किसी के यहां जाकर घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, न उस व्यक्ति का हर्ज करेंगे, न उसके कार्यक्रम में गड़बड़ पड़ेगी, और न हम अपने को 'अप्रिय अतिथि' बनाएंगे।

इस सारी बात का सारांश यह है कि हम अभी तक समय का मूल्य नहीं समझे हैं। जब हम अपने घर में समय की पाबन्दी के नियम का पालन करेंगे, तभी हम यह आशा कर सकेंगे कि हमारे जल्से, सभाएं, समारोह, सम्मेलन आदि नियत समय पर प्रारम्भ हुआ करेंगे। एक बार आप यह 'बदनामी' उठालें कि आप समय के बड़े पाबन्द हैं, फिर जहां आपको जाना होगा वहां नियत समय पर आपकी प्रतीक्षा होगी, और जिसे आपके घर आना होगा, वह भी नियत समय पर पहुँचने की अवश्य पूरी कोशिश करेगा। आप लोगों को समय की पाबन्दी की शिक्षा दें, उनके साथ आने-जाने का समय तय करें, स्वयं ठीक समय पर पहुँचें, यदि कोई दूसर व्यक्ति समय पर न आए तो उसकी प्रतीक्षा न करें, बल्कि अपने अगले कार्य-क्रम में लग जाएं; तो लोग आपको भला-बुरा कहकर

अपने आप सीधे हो जाएंगे। जिन सभा-सोसाइटियों में आपका कुछ हाथ है, उनकी बैठकों, सम्मेलनों को नियत समय पर प्रारम्भ कर दें, श्रोताओं की प्रतीक्षा न करें। ऐसा करने से एक-दो बार तो अवश्य आपको कष्ट होगा, किन्तु फिर लोग आपके जल्सों एवं मीटिंगों में आप ही समय पर पहुँच जाया करेंगे। यदि जल्से या मीटिंग के प्रधान समय पर न पहुँचें तो उनकी प्रतीक्षा न कीजिये, वरन् कार्यवाही प्रारम्भ कर दीजिये। इस तरह ही हम जनता को समय की पाबन्दी करना और समय का महत्त्व आँकना सिखा सकते हैं। विश्वास रखिये कि यदि एक दर्जन व्यक्ति भी हिम्मत करके ऐसा करने लग जाएं तो समय की पाबन्दी की लहर कुछ ही दिनों में चारों ओर फैल जाए। यदि आवश्यकता है तो केवल साहस और उद्यम की। किसी बड़े-छोटे की परवाह न करो। नियम और सिद्धान्त सब से बड़े, सब से ऊपर होते हैं। समय से अधिक मूल्यवान कोई चीज़ नहीं है। उसके उचित उपयोग के लिये सब से आवश्यक बात यह है कि हम उसे बांट कर जिस-जिस समय जो-जो काम करने का निश्चय करें उसकी स्वयं भी पाबन्दी करें और जहां तक हमारे कार्य-क्रम से दूसरों का सम्बन्ध है, उनसे भी कराएं। हम समय का महत्त्व नहीं समझते, इसका अर्थ यह है कि हम मानव-जीवन का ही महत्त्व नहीं समझते। समय की पाबन्दी मनुष्य का सभ्यता की ओर पहला क़दम है। जब तक हम समय की पाबन्दी करना न सीखें हम सभ्य कहलाने के अधिकारी नहीं।

खाने-पीने का ढंग

हमारे खाने-पीने के भी समय बंधे हुए नहीं हैं। हमारे घरों में दिन चढ़े खाना बनना प्रारम्भ होता है और रात तक रसोई का कार्यक्रम चलता रहता है। स्त्रियाँ बिस्तरे से उठते ही खाना बनाने का कार्य प्रारम्भ करती हैं, और रात तक चौके-चूल्हे का काम नहीं निपटता। घर का कोई व्यक्ति किसी समय खाना खाता है, कोई किसी समय। बच्चों का मुँह तो हर समय चलता रहता है। सारा दिन चौके का काम कर-करके और घर वालों को समय-असमय खाना खिलाते-खिलाते गृह-स्वामिनी की कमर टूट जाती है। घर वालों के अतिरिक्त आने-जाने वाले लोग भी सांस नहीं लेने देते। हमारे रिवाज कुछ ऐसे अजीब हैं कि अतिथि चाहे किसी भी समय आ जाए उसके लिये उसी समय भोजन तैयार करना पड़ता है। फिर अतिथि का आदर-सत्कार तभी माना जाता है जब उसकी विशेष खातिरदारी की जाय। वास्तव में अतिथियों के भोजन का समय भी तभी नियत और नियमित हो सकता है जब हमारे घरों का कार्यक्रम नियत और नियमित हो। यदि हम अपने घरों में सदा नियत समय पर भोजन करें तो हमारे अतिथि भी समय का पालन करने लगें।

खाने-पीने के अनिश्चित और अनियमित समय की प्रथा प्राचीन

काल से नहीं चली आ रही है। कुछ ही समय से हमारा खाने-पीने का क्रम बिगड़ा है। पश्चिमी जीवन-प्रणाली और काम-धन्धों, व्यापार, नौकरी तथा शिक्षा-प्रणाली आदि के चालू होने के बाद से हमारे घरेलू जीवन का क्रम बिल्कुल अनिश्चित हो गया है। आप किसी भी साधारण घराने को ले लें। उसमें घर के पुरुष या तो नौकरी करते होंगे या व्यापार आदि, या शायद ऐसा भी हो कि यदि कई पुरुष हैं तो कुछ नौकरी करते हैं और कुछ व्यापार। प्रत्येक औसत घराने में बच्चे-बच्चियाँ पढ़ने के लिये एक या एक से अधिक स्कूलों में जाते हैं। अब इस घर के लोगों का खाने-पीने का कार्य-क्रम देखें। जो पुरुष व्यापार में लगे हुए हैं वे सवेरे-सवेरे दुकान पर चले जाते हैं। वे सवेरे थोड़ा-बहुत खा-पी लेते हैं, और दोपहर का खाना या तो दुकान पर मंगवा लेते हैं, या घर पर आकर खाते हैं। यदि वे घर पर आकर खाते हैं तो इस काम के लिये उनका कोई निश्चित समय नहीं, उनका समय दुकानदारी की दशा, 'सीज़न', तथा ग्राहकों के ऊपर निर्भर करता है। जब उन्हें फ़ुर्सत होगी तब वे घर खाना खाने आएंगे। किसी दिन वे ११ बजे आएंगे तो किसी दिन १२, और किसी दिन १ या २ भी बज जाएंगे। यही हालत शाम को होती है। किसी दिन शाम का भोजन वे ७ बजे करेंगे तो किसी दिन ६ बजे तक भी उन्हें फ़ुर्सत नहीं होगी। घर में स्त्री 'गरम' खाना खिलाने की उत्कण्ठा में चूल्हा-चौका लिये प्रतीक्षा करती रहेंगी।

नौकरी वालों का यह हाल है कि १० बजे दफ़्तर जाना होगा

तो ६ बजे जल्दी-जल्दी खाना खाकर दफ़्तर भागना पड़ता है। शाम को पता ही नहीं कि दफ़्तर से कब छुटकारा मिले। पाँच बजे, छः बजे, सात बजे, जब दफ़्तर से छुटकारा होगा तब वे घर आ सकेंगे।

अब घर के बच्चों को लीजिये। गर्मियों में स्कूल जाने वाले बच्चों को सवेरे-सवेरे स्कूल जाना पड़ता है। इतने सवेरे खाना खाने का प्रश्न ही नहीं उठता। वे थोड़ा-बहुत प्रातराश करके स्कूल चले जाते हैं। फिर दोपहर को १-२ बजे घर आकर खाना खाते हैं। शाम को खेल-कूदकर आएंगे तब खाना खाएंगे। परन्तु शाम का भी कोई बिल्कुल निश्चित समय नहीं है। सर्दियों में उन्हें १० बजे लगभग स्कूल जाना होता है, इसलिये वे ६ बजे के लगभग खाना खाकर स्कूल के लिये चल पड़ते हैं। शाम को वे ५ बजे के लगभग आते हैं। सवेरे ६ बजे खाना खाया था, इसलिये शाम को जल्दी भूख लग जाती है। इसलिये उनके लिये खाना जल्दी तैयार करना होता है। कई बार यह भी होता है कि एक घर के कई बच्चे विभिन्न संस्थाओं में पढ़ते हैं और उन संस्थाओं में पढ़ाई के समय विभिन्न होते हैं। इसलिये प्रत्येक बच्चे की सुविधा के अनुसार भोजन तैयार करने का प्रबन्ध करना पड़ता है।

अब देखिये कि जिस घर में स्कूल जाने वाले बच्चे हैं और घर के पुरुष व्यापार और नौकरी, या केवल व्यापार या नौकरी करते हैं तो सब का भोजन का समय एक-दूसरे के साथ ताल-मेल नहीं खाता। सवेरे भोजन का समय दिन चढ़े प्रारम्भ होकर दोपहर

१-२ बजे तक चलता है, और शाम को ५ बजे चूल्हे-चौके का कार्य प्रारम्भ होकर रात के ६ बजे तक चलता रहता है। सवेरे की चाय दूध या लस्सी-पानी का काम और शाम की चाय आदि का काम अलग रहा।

हमें विचार करना चाहिये कि हमारे इस कार्य-क्रम और भोजन के अनिश्चित समय का क्या परिणाम होता है। हमारे घरों में स्त्रियां बेचारी सवेरे से रात तक चौके-चूल्हे के काम में घिरी रहती हैं, वे रसोई में एक तरह से क़ैदी की भांति बन्द रहती हैं; उन्हें आराम करने का बिलकुल कोई समय नहीं मिलता। यह बेआरामी और व्याकुलता का जीवन उन्हें समय से पूर्व ही बूढ़ी और शक्ति-हीन बना देता है। हम कहा करते हैं कि स्त्रियों को चूल्हे-चौके के काम से घृणा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि काम-काज करने से उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है। परन्तु चौके-चूल्हे का काम भी ढंग का होना चाहिये। कोई भी काम जब बेढंगेपन से और सीमा से बाहर किया जाएगा तो वह लाभप्रद होने के स्थान पर हानिकारक बन जाएगा। पुरुष कहते हैं कि वे विवाह इसलिये करते हैं ताकि "रोटी-टुकड़े का आराम हो जाए।" सो जब विवाह होकर बहू ससुराल में आती है तब से यह 'रोटी-टुकड़े का आराम' पहुँचाने का काम शुरू होता है और उसके साथ ऐसा चिमटता है कि अन्तिम साँस तक उसका पीछा नहीं छोड़ता।

चूँकि हमने अपना समय नहीं बांधा हुआ है, इसलिये अतिथि को यह आशा रहती है कि वह जब भी पहुँचेगा उसे भोजन मिल

जायगा। परिणाम यह होता है कि कोई किसी समय आवे—चाहे उस समय चौका उतर चुका हो, सब घर वाले खा-पी चुके हों, और सब खाना समाप्त हो चुका हो—परन्तु अतिथि के लिये उसी समय फिर चूल्हा चढ़ाना पड़ता है। खाना पकाने का दैनिक कार्य-क्रम ही स्त्रियों की कमर तोड़ने वाला होता है। फिर असमय का अतिथि तो उस दिन को उनके लिये भारी असुविधा का दिन बना देता है।

समय-असमय खाना खाने का हमारे स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य का यह अत्यन्त आवश्यक नियम है कि भोजन प्रतिदिन निश्चित समय पर करना चाहिये। अनियमित समयों पर भोजन करने से पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है और पाचन-शक्ति कमजोर हो जाने से अनेकों रोग आ घेरते हैं।

ये सब कठिनाइयां और कष्ट दूर हो सकते हैं यदि हम लोग अपने खाने-पीने के समय निश्चित करलें। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा करने में कई रुकावटें हैं, परन्तु वे ऐसी नहीं हैं जिन्हें दूर न किया जा सके। खाने-पीने का समय न बांधने से जो कष्ट हमारी स्त्रियों को उठाना पड़ता है उसके मुक़ाबले में समय बांधने में जो कठिनाई हमें होगी वह कुछ भी नहीं।

जो लोग व्यापार आदि में लगे हुए हैं उन्हें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि वे निश्चित समय पर या तो खाना अपने ठिकाने पर मंगवा लिया करें, या निश्चित समय पर घर आकर खा लिया करें। स्कूल जाने वाले बच्चों के भी दोपहर के खाने का प्रबन्ध

स्कूल की तरफ से होना चाहिए। उनके लिये गर्मियों में सवेरे बिना खाये या बासी रोटी खाकर स्कूल जाना और दोपहर एक बजे आकर सवेरे का खाना खाना हानिकारक है। इसी तरह सर्दियों में सवेरे खाकर जाने और फिर शाम को आकर खाने का अर्थ यह हुआ कि वे सारा दिन भूखे रहें। होता यह है कि वे अवकाश में छाबड़ी वालों से गन्दी, गली-सड़ी और हानिकारक वस्तुएं लेकर खा लेते हैं जिसका सिवाय हानि के और कोई परिणाम नहीं होता। परन्तु दोपहर के खाने का प्रबन्ध स्कूलों में तभी हो सकता है जब विद्यार्थियों के मां-बाप स्कूल के प्रबन्धकों को अपना पूरा सहयोग दें, और बच्चों को ऐसी खुराक दी जाए जो सुविधा के साथ तैयार हो सके तथा जो हो भी स्वास्थ्यदायक। यदि सामूहिक रूप से ऐसा प्रबन्ध किया जाए तो वह महंगा भी नहीं पड़ेगा। खाना बच्चों ने जैसा घर पर खाना वैसा ही स्कूल में खाना। फिर छाबड़ी वालों से सौदा लेने के लिए उन्हें जो पैसे दिये जाते हैं वे भी इस प्रबन्ध में लगाए जा सकते हैं। और यदि इस प्रबन्ध में थोड़े से पैसे अधिक लग भी जाएं तो बच्चों की सुविधा, स्वास्थ्य और हित के मुक़ाबले में यह बात कोई महत्त्व नहीं रखती। स्कूलों के प्रबन्धक अथवा सरकार भी इस प्रबन्ध में आर्थिक सहायता देकर हाथ बटा सकती है।

घरों में बच्चे बड़ा तंग करते हैं और सारा दिन खाने की चीजें मांगते रहते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि घरों में बड़े लोग बारी-बारी खाना खाते हैं और, जैसा कि हम ऊपर

लिख चुके हैं, अधिकांश घरों में पुरुषों के भोजन के समय बहुत भिन्न होते हैं ; इसलिये बच्चे भी उन्हें खाना खाते देखकर खाना मांगते रहते हैं। यदि सब घर वाले एक साथ बैठकर भोजन करें और बच्चे भी सबके साथ बैठकर भोजन कर लें तो न वे किसी को असमय भोजन करते देखेंगे और न समय-असमय भोजन मांगेंगे। अनुभव करके देखा गया है—और कोई भी सज्जन यह प्रयोग अपने घर में करके देख सकते हैं—कि बच्चे हर काम के लिये समय नियत करने को बहुत पसन्द करते हैं। यदि उनके ज़िम्मे यह कार्य लगा दिया जावे कि वे खाने के नियत समय पर घंटी बजावें, या सबको बुलाकर लाएं तो वे ऐसा काम बड़ी खुशी से करेंगे। क्या मजाल जो वे ऐसे काम से तनिक भी उकता जाएं। परन्तु शर्त यह है कि हम नियत समय की स्वयं पूरी पाबन्दी करें और उन्हें शिकायत का कोई मौक़ा न दें। कुछ दिनों बन्धे हुए समय पर भोजन करने से उनको यही आदत पड़ जाती है। फिर वे समय-असमय खाना नहीं मांगते। हां, जो बहुत छोटे बच्चे (शिशु) हों उन्हें अवश्य अपने भोजन के समय से पहले या पीछे दूध आदि दे देना चाहिए। उन्हें खाने पर अपने साथ बिठाने से वे भी रोटी आदि मांगने लगते हैं और उस आयु में उन्हें रोटी नहीं देनी चाहिए। परन्तु यह परम आवश्यक है कि छोटे बच्चों को दूध, फलों का रस इत्यादि जो भी देना हो, वह निश्चित समय पर दिया जावे। बच्चे के तनिक सा रोने पर माताएं उन्हें दूध पिलाना या कुछ

और खिलाना-पिलाना शुरू कर देती हैं। वे समझती हैं कि खिलाना-पिलाना बच्चों के रोने की एक अचूक, अमोघ दवा है। परन्तु बच्चों का स्वास्थ्य बिगाड़ने का इससे अधिक सरल और अचूक उपाय अन्य कोई नहीं है।

हमें भी अन्य उन्नत देशों की भांति सारे देश के लिये खाने-पीने के समय बांध लेने चाहियें। कुछ लोगों ने, जो पश्चिमी सभ्यता पर चल रहे हैं, इस प्रकार की प्रथा अपने घरों में अपना ली है। परन्तु हम सबको इस प्रथा पर चलना चाहिये। अच्छी बात किसी से भी सीख कर धारण करना कोई बुरी बात नहीं है।

यदि हम देश-व्यापी स्तर पर ऐसा कुछ प्रबन्ध करेंगे तो स्कूलों और दफ्तरों को भी अपने समय इस तरह निश्चित करने पड़ेंगे जिससे यह दैनिक कार्य-क्रम समय पर हो सके। स्टेशनों पर हॉकर सवेरे से लगाकर रात के १२-१२ बजे तक रोटी आदि की आवाज़ें देते रहते हैं। यदि सब लोगों का एक निश्चित समय पर भोजन करने का रिवाज हो तो टाइम-टेबल में उस समय गाड़ी जिस स्टेशन पर पहुँचने वाली हो उस समय वहां स्वच्छ, शुद्ध और ताज़ा भोजन मिल जाए।

घरों में एक और भी कठिनाई है—भोजन पकाने वाली स्त्रियां किस प्रकार अन्य घर वालों के साथ बैठकर भोजन करें। परन्तु यह कोई कठिन बात नहीं है। साग-भाजियां तो सब घरों में पहले बन ही जाती हैं, फुलके या पराठे आदि बनाकर दबाकर

किसी बरतन में रखे जा सकते हैं। इस तरह सारा सामान अपने पास रखकर सब लोग इकट्ठे बैठकर आनन्द-पूर्वक खा सकते हैं। हां, 'खाने का सामान रसोई से बाहर नहीं जा सकता,' यह विचार बदले हुए और नित्य बदलते हुए युग को दृष्टि में रखते हुए छोड़ना पड़ेगा। भारत के कई भागों में भोजन को दो श्रेणियों में बांटा हुआ है—'कच्चा' (फुलके, दाल, भात, तथा कुछ विशेष साग आदि) और 'पक्का' (पराठे, पूरी, कुछ भाजियां आदि।) 'पक्का' भोजन रसोई से बाहर आ सकता है, परन्तु 'कच्चे' के बाहर आने से वह अशुद्ध, अपवित्र हो जाता है, लोग ऐसा मानते हैं। इस विभाजन का क्या वास्तविक अर्थ है इसे कोई नहीं जानता। आधुनिक युग में इन व्यर्थ के वहमों को छोड़ना पड़ेगा। नये युग की आवश्यकताओं के अनुसार हमें अपने भोजन-संबन्धी विचार, रिवाज और प्रबन्ध भी बदलने पड़ेंगे।

साथ बैठकर खाना खाने का एक यह भी लाभ है कि बच्चे भी ठीक ढंग से भोजन करना सीख जाते हैं। बड़ों को देखकर उन्हें भी सभ्यता और उचित तरीके से खाना खाना पड़ता है। परन्तु बड़ों को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि छोटों को खाने के समय झिड़काया-धमकाया न जाए। ऐसा करने से साथ बैठकर खाने-पीने का आनन्द जाता रहता है। साथ बैठकर खाने का आनन्द और लाभ तभी है जब सब हँसी-खुशी खाएं-पीएं। उस समय किसी का क्रोध करना और किसी का रूठना, मुहँ बिसूरना या नाराज़ होना सारे आनन्द को समाप्त कर देता है।

हँसी-खुशी सब मिल कर खाएं-पीएं तो खाने में चौगुना स्वाद आता है और इस तरह खाया हुआ खाना शीघ्र पच जाता है।

साथ बैठकर खाना खाने का एक बड़ा भारी लाभ यह है कि घर के सब व्यक्तियों में बड़ा स्नेह हो जाता है। यदि घर के कुछ व्यक्तियों में मन-मुटाव हो भी गया हो तो साथ बैठकर भोजन करने से वह मन-मुटाव एवं मनोमालिन्य दूर हो जाता है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति को व्यापार में अथवा दफ़्तर के किसी कार्य के सिलसिले में अथवा किसी और मामले के सम्बन्ध में कोई विशेष परेशानी एवं चिन्ता हो तो वह भी थोड़ी देर के लिये दूर हो जाती है।

खाने-पीने के सम्बन्ध में एक और बात जो बड़ी आवश्यक है वह यह है कि भोजन करने का स्थान भी एक निश्चित स्थान होना चाहिये। यह अच्छा रहेगा कि वह स्थान रसोई के निकट हो। यदि मकान थोड़ा बड़ा हो तो सुविधा-पूर्वक हम भोजन के लिये अलग स्थान नियत कर सकते हैं। यदि मकान बहुत छोटा हो तो भी पर्दे आदि डालकर थोड़ी सी जगह इस काम के लिये अलग नियत कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह बात भी बहुत अच्छी रहेगी कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ कुर्सियां और एक बड़ी सी मेज़ इस काम के लिये रख ली जावें। यह आवश्यक नहीं है कि मेज़-कुर्सियां क़ीमती ली जावें। सामर्थ्य थोड़ी हो तो साधारण भी ली जा सकती हैं। वे भी उतना ही काम देंगी जितना क़ीमती मेज़-कुर्सियां देती हैं। जो स्थान खाने के लिये नियत

किया जावे वह बहुत स्वच्छ रखा जाए और प्रतिदिन उसकी समुचित सफ़ाई होनी चाहिये। उस स्थान की छत को विशेष रूप से साफ़ करते रहना चाहिये। छत में जाले आदि न लगने देने चाहियें। कई बार छत में से मकड़ी, कीड़े आदि भोजन की चीज़ों में गिर पड़ते हैं। कई बार उनका पता भी नहीं लगता और उनसे बड़ी हानि पहुँच जाती है। यदि मेज़-कुर्सी का प्रयोग न करना चाहें तो बैठने का उचित प्रबन्ध हो सकता है। इस सूरत में आसन आदि बड़े साफ़ होने चाहिएं और फ़र्श भी साफ़ होना चाहिए। परन्तु चूंकि फ़र्श पर गन्दगी पड़ती रहती है—कितनी ही बार छोटे बच्चे फ़र्श पर मल-मूत्र त्यागते रहते हैं—इसलिये मेज़-कुर्सियों का प्रबन्ध अधिक अच्छा है। हां, सफ़ाई मेज़-कुर्सियों की भी उचित तौर पर होनी चाहिए। चारपाइयों पर बैठकर भोजन नहीं करना चाहिये। उन्हीं पर हम सोते हैं, उन्हीं पर बच्चे मल मूत्र त्याग देते हैं। इसलिये उन पर बैठकर और थाली रखकर खाना खाना उचित नहीं है।

घरों का परस्पर जीवन

हमारा घरेलू जीवन कुछ ऐसा फीका और बेस्वाद होता है कि हमें मनोरंजन एवं दिल-बहलावे के लिये और जगहों में भटकना पड़ता है। हम घर को रोटी खाने, सोने या खर्चे के लिये रुपये लेने का स्थान ही समझते हैं। हमारे दिलों में घर के लिये वह मोह और प्यार नहीं होता जो होना चाहिये। बच्चे भी घरों को आवश्यक वस्तुएं प्राप्त करने का स्थान या अपना सिर छुपाने एवं सोने की जगह समझते हैं। हमारी माताओं के लिये घर अगणित जंजाल और झंझटों का स्थान है। जब कभी उन्हें अकेली गली-मुहल्ले में या कहीं भी जाने का अवसर मिल जाता है तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती है, और वे सुख का सांस लेती हैं। हमारे पिता या अन्य 'बड़े' तो घर में केवल शासन करने के लिये ही आते हैं।

हमारे घरों के जीवन की जो वर्तमान प्रणाली है उसमें तो घर के किसी भी व्यक्ति को सुख और शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। हो भी कैसे? लड़के-लड़कियों को तो माता-पिता की झाड़ और डांट-डपट ही प्राप्त होती है, इस लिये वे घर को सुख और आनन्द का स्थान कैसे समझ सकते हैं? माता-पिता के साथ न वे खुलकर बातें कर सकते हैं, न उनके साथ खेल सकते

हैं, न उन्हें अपने मन की कोई आन्तरिक बात कह पाते हैं। बाप को वे एक हौवा समझते हैं। मां उन्हें उसका नाम लेकर डराती रहती है। इसलिये घर में बाप के घुसते ही सब बच्चे चुप हो जाते हैं, बाप की एक घुड़की उनके लिये काफी है।

घर के सारे प्राणी किसी समय इकट्ठे नहीं होते। हों भी कैसे, जबकि हमने अपनी दिनचर्या में कोई ऐसा नियम और कोई ऐसा समय रक्खा हुआ ही नहीं है। रोटी हम इकटठे बैठ कर नहीं खाते, न ही किसी और अवसर पर हम सारे मिलकर बैठते हैं। यदि बातें करने का अवकाश या अवसर हो भी तो माता-पिता अलग बैठेंगे, बहिनें अलग और भाई अलग। कभी २ मां के पास बैठकर तो भले ही सारे बहिन-भाई इकट्ठे होकर बातचीत करलें, परन्तु मां और बाप दोनों के होते हुए सारे बेटे-बेटियां कभी उनके साथ मिलकर नहीं बैठते। यह इसलिये है कि हम ने शुरू से ऐसा अभ्यास नहीं डाला हुआ। यदि हम उन्हें बचपन से इस बात के लिये प्रोत्साहित करें कि वे मां-बाप के साथ मिलकर बैठें और उनके साथ खुलकर बातें करें, तो वे बड़े होकर कभी इतना संकोच न करें।

क्या घर केवल सोने और रोटी खाने का ही स्थान है? क्या वह दुखों और झगड़ों और क्लेशों का केन्द्र है जहां घर वाले कैदी की भांति जीवन काटने के लिये विवश हैं? अभी तक तो हमने घर को क़ैदख़ाना और नरक बनाया हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

ऐसे रूखे और बेस्वाद जीवन का क्या परिणाम हो रहा है ? हमें अपने घरों से कोई प्यार नहीं, क्योंकि घरों में खुशी के, आनन्द के, कोई साधन नहीं। हम खुशी और मनोरंजन प्राप्त करने के लिये मित्रों के पास चले जाते हैं, या सिनेमा-थियेटर, क्लब अथवा अन्य मनोविनोद के स्थान ढूंढ़ते हैं। हमारा घर के व्यक्तियों के साथ पारस्परिक प्यार नहीं होता, क्योंकि हम कभी मिलकर बैठे ही नहीं, और न ही हमने कभी एक दूसरे के विचारों और भावों को समझने का प्रयास किया है। यही कारण है कि हम लोग सभा-सोसाइटियों में भी मिलकर काम नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे अन्दर घर में मिलकर बैठने का भाव ही नहीं भरा गया। जब हम घरों में बच्चों को अपने विचार और भाव प्रकट करने की स्वाधीनता नहीं देते, तो उनमें अपने विचारों और भावों को निःसंकोच प्रकट करने की आदत ही नहीं पड़ती। इसलिये बड़े होकर भी वे अपने विचारों और भावों को खुले दिल से और निडरता के साथ प्रकट करने में असमर्थ रहते हैं। घर में हर समय मां-बाप की इच्छा के अनुकूल चलना पड़ता है, हम चूं-चरां नहीं कर सकते। चाहे किसी मामले में हमारे मां-बाप ठीक हों, परन्तु न वे कभी अपने विचार हमारे सामने प्रकट करके हमें समझाने की कोशिश करते हैं, और न हम समझने की कोशिश करते हैं, क्योंकि हमारे विचारों को समझने की भी तो कोई कोशिश नहीं करता।

पता नहीं हमारा घरेलू जीवन सदा से ऐसा चला आ रहा है,

या अभी यह ऐसा गया-बीता हो गया है। जब सम्मिलित कुटुम्ब एक ही जगह रहते थे, तब शायद यह रिवाज ठीक हो। जब एक ही घर में कई सास-बहुएं, देवरानियां-जेठानियां, भाई-भाई, तथा अनेकों पुत्र-पुत्रियां रहते थे और सब का भोजन एक ही रसोई में बनता था, तब शायद यह रिवाज ठीक होगा कि स्त्रियों की टोली अलग बैठी है और पुरुषों की अलग, लड़कों की अलग और लड़कियों की अलग। परन्तु अब तो सारा भाईचारा छिन्न-भिन्न हो चुका है। अब तो एक पति-पत्नी और उनकी सन्तान—ये इतने ही व्यक्ति इकटठे रहते हैं। यदि एक वंश में कई भाई हैं तो उनके परिवार पहले समय की भांति इकट्ठे नहीं रहते, वरन् सब अलग-अलग रहते हैं। इस परिस्थिति में यह और भी आवश्यक है कि घर के बाल-बच्चे, बड़े-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब मिलकर बैठें, उनमें आपस में स्नेह हो और सब एक-दूसरे के विचारों, भावों और कठिनाइयों तथा आकांक्षाओं को सहानुभूतिपूर्वक समझने का प्रयास करें।

हमें अपने घर स्वर्ग के समान बनाने चाहियें, जहां घर का प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने काम से खुशी-खुशी घर आवे, घर के सारे प्राणी रल-मिलकर उठें-बैठें, खेलें, खाएं-पीएं तथा इकट्ठे प्रसन्नतापूर्वक समय बिताएं, एक-दूसरे की बातें सुनें, एक-दूसरे के काम-काज को रुचि-पूर्वक सुनें समझें, और विचारों का खुले तोर पर आदान-प्रदान करें। जब तक हम लोग घरों में इस तरह नहीं उठें-बैठेंगे हमारे अन्दर परस्पर प्रीति नहीं हो सकती।

यह तभी होगा जब मां-बाप बच्चों को अपना दास और सेवक समझना छोड़ देंगे और यह ख्याल त्याग देंगे कि बच्चों को बिल्कुल समझ नहीं होती, तथा घर में जो कुछ हो वह केवल मां-बाप की इच्छा-अनुकूल ही हो। जब तक माताओं-पिताओं का व्यवहार और दृष्टिकोण नहीं बदलेगा तब तक घर के सब व्यक्तियों का इकट्ठा बैठना असम्भव है।

घरेलू जीवन का यह उद्देश्य होना चाहिये कि वह घर के सब प्राणियों को अधिक से अधिक सुख, शान्ति और आनन्द दे। अन्यथा रोटी खाने और सोने-बैठने के तो और भी बहुतेरे स्थान हो सकते हैं। बच्चे पैदा करके उन्हें पाल-पोसकर बड़ा करके और जब वे बड़े हो जाए तो उनका विवाह करके हम लोग यह समझकर सन्तुष्ट हो जाते हैं कि हमने अपने कर्तव्य का पालन कर दिया। परन्तु इन सब बातों का कोई लाभ नहीं, यदि हम उन्हें अच्छी आदतें न सिखाएं और अच्छी शिक्षा न दें। आज-कल हमारे घरों का जैसा जीवन है वह हमें ऊँचा नहीं उठा सकता। बल्कि वह हमें यह अनुभव कराता है कि हमारा घरेलू जीवन बड़ा दुखदायक है। यदि हम आने वाली पीढ़ियों का भला चाहते हैं, तथा अपने देश और राष्ट्र की उन्नति चाहते हैं तो हमें अपना घरेलू जीवन सुधारना चाहिये।

आदर्श घर

आदर्श घर ऐसा होना चाहिये जहां प्रत्येक की उचित प्रतिष्ठा हो; प्रत्येक का परामर्श लिया जावे; प्रत्येक को बढ़ने और फलने-फूलने की पूरी स्वतन्त्रता मिले; बड़े-छोटे सब के विचारों को समझने का प्रयास किया जावे; किसी का मन न दुखाया जावे, तथा प्रत्येक के दृष्टिकोण को समझने की कोशिश की जावे।

घर आनन्द और शान्ति का स्थान होना चाहिये जहां घर के सारे प्राणी अपने काम-काज से खुशी-खुशी वापस आएं; अपनी रोज की आप-बीती चाव के साथ एक-दूसरे को सुनावें; सब एक-दूसरे के कामों के प्रति अपनी प्रसन्नता प्रकट करें; एक-दूसरे को परामर्श और राय दें; तथा सब एक-दूसरे के काम में सहानुभूतिपूर्वक दिलचस्पी लें।

घर के सब प्राणी सवेरे जल्दी उठें, सारे प्रातःकर्मों से बारी-बारी निवृत्त होकर, इकट्ठे मिलकर बैठें, सारे इकट्ठे खा-पीकर अपने-अपने कामों पर चले जाएं। शाम को भी सारे इकट्ठे बैठकर थोड़ी देर बातचीत करें, सारे मिलकर एक साथ थोड़ा खा पी लें। उसके बाद जिसे खेलने जाना हो वह खेलने चला जाए, जिसे किसी से मिलने जाना हो वह मिलने चला जाए, तथा जिन्हें घर के काम-काज करने हों वे अपने कामों में लग जाएं। रात के

भोजन के समय सब ठीक समय पर वापस आ जाएं और सब मिलकर खाएं-पीएं, हँसें-खेलें, गाएं-बजाएं, पढ़े-लिखें तथा सब कामों से निवृत्त होकर और पूरा सन्तोष, सुख और आनन्द प्राप्त करके समय पर सो जाएं।

घर के कामों में सब घर वाले अपनी आयु और शक्ति के अनुसार हाथ बटाएं, किसी प्रकार के भी काम से कोई घृणा न करे। सारे काम बांटकर सुन्दर ढंग से और प्रेम-पूर्वक किये जावें; सब कामों में परामर्श देने योग्य व्यक्तियों से परामर्श लिया जावे और सब की साँझी सलाह से काम किये जावें। घर में खाने-पीने की चीजें तथा अन्य जितने सुख-सुविधा के सामान हों उन पर सब का समान अधिकार माना जावे और सब उनका अपने हिस्से तथा आवश्यकता के अनुसार उपभोग करें।

घर के तथा अपने व्यवसाय के काम के अतिरिक्त सब को कुछ और भी शौक़ होने चाहिएं—साहित्य, संगीत, लिखना-पढ़ना, सेवा, विज्ञान, कला-कौशल आदि, जिनसे दिल-बहलावा होता रहे। ऐसे कामों में शेष घर वालों को हस्ताक्षेप नहीं करना चाहिये, वरन् जहां तक हो सके एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिये और उत्साहित करना चाहिये। उत्साह मिलने पर ऐसे कामों में मन लगा रहता है। जीवन का दुगुना आनन्द आता है और जीवन की कठिनाइयां, कड़वाहटें, और कष्ट हल्के हो जाते हैं।

घर वालों का एक-दूसरे के साथ व्यवहार बड़ा मधुर और सहानुभूति-पूर्ण होना चाहिये। पति अपनी पत्नी का निरादर न

करे, न पुत्र-पुत्रियों के सामने उसको झिड़के-झाड़े, न औरों के बैठे हुए अपनी कोई बात मनवाने के लिये हठ करे और उसकी रद्द करे। न स्त्री किसी अन्य के सामने अपने पति के साथ कड़ुवा बोले, न किसी से उसकी शिकायतें करे, न उसकी नीयत पर संदेह करे; तथा अपने सास-ससुर का पूरी तरह आदर करे। मां-बाप अपने सब बेटे-बेटियों को समान दृष्टि से देखें, किसी के साथ विशेष अनुग्रह का या विशेष उपेक्षा का व्यवहार न करें; अपने आपको सन्तान के सहायक और पथ-प्रदर्शक समझें, शासक न समझें, अपने को उनके लिये हौवा न बनाएं; उन पर ज़रा-ज़रा सी बात पर क्रोध न करें; किसी के भी सामने—और विशेष-कर उनके मित्रों एवं सहपाठियों के सामने—उनका निरादर-अपमान न करें; सदा उनकी ग़लतियों को सहानुभूतिपूर्वक समझने का यत्न करें; तथा उनका विचार शान्तिपूर्वक सुनकर अपना विचार धैर्यपूर्वक उन्हें बताएं। प्यार वह काम कर दिखाता है जो मार कभी नहीं कर सकती। अबोध शिशु-हृदय पर बड़े कभी आघात न पहुँचाएं; उनके प्रति वे स्नेहपूर्ण-व्यवहार करें। छोटे हाथों और कोमल-मति के छोटे, अधूरे और बेढंगे कामों पर मां-बाप अथवा अन्य बड़े हँसकर उनका दिल न तोड़ें। उनके कामों को उनकी बुद्धि और बल के नापमान से परखने का प्रयत्न करें, अपनी बुद्धि और बल की तराजू से उन्हें न तोलें; छोटे-मोटे कामों में उन्हें स्वाधीनता दें और उनकी शक्ति, समझ-बूझ और निर्णय-

शक्ति पर भरोसा करें तथा उनमें आत्म-विश्वास की भावना उत्पन्न करने का प्रयत्न करें।

घर के जीवन में ऐसे अवसर भी होने चाहियें जब सगे-सम्बन्धी और मित्र आदि आवें, सब मिलकर उठें-बैठें, खाएं-पीएं, हँसे-खेलें और रंग-रलियां मनाएं। परन्तु रस्मी आना-जाना, लेना-देना बिल्कुल नहीं होना चाहिये। जिनके दिल न मिलें, जिनकी रुचियां आपकी रुचियों से मिलती हों और जो रस्मी बातों को महत्त्व न दें, वे मिलकर बैठें। बच्चे अपनी आयु के बच्चों के यहाँ आएं-जाएं, उन्हें अपने घर बुलाएं और मिल-जुल कर आनन्द की दो घड़ियां बिताएं। ऐसे अवसरों पर बड़ों को चाहिये कि वे बच्चों की टोली को सहायता करें, परन्तु उनके खेलों और बातों में अनधिकृत हस्तक्षेप न करें। आए हुए बच्चों का आदर-सत्कार किया जाए, परन्तु होवे सब कुछ सादा, सुथरा और प्रेम-सहित। जवान लड़के-लड़कियां अपनी आयु के लड़के-लड़कियों के साथ मेल-जोल तथा आना-जाना रखें, मां-बाप ऐसे सम्बन्धों को संदेह की दृष्टि से न देखें।

जन्म, मरण, शोक, हर्ष, विवाह आदि के अवसर सीधे-स्वभाव, सरलता-पूर्वक, आराम के साथ आएं और निकल जाएं। खुशी के अवसरों पर अपनी शान दिखाने का अनुचित यत्न न किया जावे; न ही शोक के अवसरों पर अपनी मानवी दुर्बलता और अपने शोक को अधिक व्यक्त किया जावे। आनन्द के समय भी और सुख के समय भी प्रभु की इच्छा को सर्वोपरि समझना

चाहिये तथा हर प्रकार के दिखावे से दूर रहना चाहिये। विवाह न पुत्र का भारी मालूम हो, न पुत्री का। विवाह का समय ऐसा मालूम हो जैसे कोई बच्चा एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में चढ़ा हो। न बेटी के ससुराल में जाने पर आंसुओं की झड़ी लगाई जाए, न घर में बहू के आने पर खुशी से पागल बना जाए।

विवाह के बाद कभी-कभी बेटे, बेटियां, बहनें, भाई अपने बच्चों समेत आएं। परन्तु अपने सब ऊपरले खर्च वे स्वयं करें। किसी बच्चे को कोई विशेष चीज़ खाने के लिये दी जाती हो, उसका खर्च, धोबी, दर्जी, डाक्टर तथा कपड़े आदि का खर्च अपने अपने बच्चों का अलग-अलग हो। आने वाले रेल, तांगे, लारी आदि का खर्च अपनी-अपनी जेब से दें। बिस्तरे, कपड़े अपने लिये साथ लायें। चीज-वस्तु भी अपने लिये स्वयं खरीदी जावें। केवल भोजन सब का सम्मिलित हो। आए-गए के दर्शन तभी मीठे और सुखद लगते हैं जब घर वाले पर कोई फ़ालतू बोझ न पड़े। इस तरह भाई, बहन, बेटी, अतिथि आदि की प्रतिष्ठा और सन्मान बढ़ता है। उनके आत्म-सन्मान की भी तभी रक्षा हो सकती है।

यदि दो तीन कुटुम्ब एक ही घर में इकट्ठे रहते हों तो उनका आपस का हिसाब जितना साफ रहे उतना ही अच्छा। इस से झगड़े का कारण कम हो जाता है, और आपस का स्नेह बढ़ता है। हिसाब में सगे पिता-पुत्र को भी पाई-पाई का लेखा चुकती कर देना चाहिये।

सारांश यह है कि हमारा घरेलू जीवन पारस्परिक स्नेह, एक-दूसरे को समझने, एक-दूसरे के सुख-दुख में हाथ बंटाने, तथा निःस्वार्थ व्यवहार पर अवलम्बित होना चाहिये। तभी हमारा घरेलू जीवन सुख और आनन्द का देने वाला और स्वर्ग की समता करने वाला होगा।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

एक सरल और सुगम विवाह का प्रयोग

किसी भी प्रचलित रीति का सुधार करते समय कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बड़ों का दोष, रिश्तेदारों की नाराज़गी, भाईचारे की नुक्ताचीनी, मित्रों के उपालम्भ तथा अन्य और भी कुछ। सहयोग और सहानुभूति तो कोई विरला ही देता है, नये विचारों को कोई ही समझता है, तथा मतभेद को सहन करने वाला कोई-कोई ही मिलता है। एक युवक हृदय ने इस कठिन घाटी को लांघने का प्रयत्न किया—अगले पृष्ठों में उसके विवाह की संक्षिप्त कहानी लिखी गई है। मुंह से कही गई बातें तथा झगड़े, चिट्ठी, पत्री, कार्य का पूर्ण होना आदि सब बातें इसमें दी गई हैं। यह एक स्वप्न या मनघड़ंत या कोरी कहानी नहीं है वरन् किसी की सच्ची आप-बीती, सन् १६२७-३७ के बीच में घटी हुई घटना का वर्णन है।

विवाह से पहले के झगड़े

किसी बड़ी-बूढ़ी ने मुँह से बात निकाली, दूसरी ने कहा, "घर आई लक्ष्मी कहीं लौटाई जा सकती है।" किसी की भतीजी होने के नाते स्त्रियों ने 'हां' कर दी। पुरुषों ने भी गोल-मोल बात कर छोड़ी और बात पक्की हो गई, ऐसा समझ लिया गया। दस-वर्षीया बाला के कानों तक बात न पहुँची, परन्तु कालिज में पढ़ने वाले सत्रह-वर्षीय लड़के को खबर मिल गई। लड़के ने शोर मचाया और पिता ने विश्वास दिलाया कि तुमसे पूछे बिना कुछ भी नहीं किया जायगा। माँ-बाप ने समझा कि आजकल के कालिज के लड़कों की तरह 'ऐसे ही' शोर मचा रहा है, स्वयं ही मान जायगा। परन्तु लड़के ने इतना झगड़ा खड़ा कर दिया कि दस साल तक किसी को चैन से न बैठने दिया। आगामी पृष्ठों में दिये गये कुछ पत्रों द्वारा पता लग सकेगा कि क्या-क्या झगड़े पड़े और उनका निपटारा किस प्रकार हुआ।

भतीजे की ओर से चाचा को

मेरे ससुर साहिब ने कई बार कहा है कि आपको 'ज' की सगाई के विषय में कहूँ, जिससे बात पक्की हो जावे। मैं उन्हें सदैव यही कह देता हूँ कि मुँह से कहना ही काफ़ी समझना

नोट :—इस कहानी में 'ज' लड़के का नाम है और 'भ' लड़की का। लड़की का फूफा मध्यस्थ (बिचोला) था, जो लड़के के ताऊ का पुत्र था अथवा लड़के के पिता का भतीजा। लड़की बिचोले के साले (डाक्टर साहिब) की पुत्री थी।

चाहिये; परन्तु वे बार-बार सगाई की रस्म अदा करने के लिए कह रहे हैं। जब आप लाहौर आए थे उस समय भी आपसे कहा गया था; परन्तु आपने कोई निश्चित जवाब नहीं दिया, इसलिये उन्हें चिन्ता हो गई है। सो कृपा करके बहुत शीघ्र मुझे साफ़-साफ़ लिखें कि आपकी क्या इच्छा है, जिससे मैं उन्हें कुछ उत्तर दे सकूं।

चाचा की ओर से भतीजे को

तुम्हारा पत्र पढ़ कर बड़ी हैरानी हुई। मालूम होता है कि जो कुछ मैंने अपने पहले पत्र में तुम्हें लिखा था, उससे तुम्हारी तसल्ली नहीं हुई है। जैसा तुम्हें पहले लिखा था कि 'ज' के लिये अन्य किसी सम्बन्ध की बात-चीत नहीं की जाएगी, तथा तुम्हारे कहे को बिना किसी विशेष कारण के अस्वीकार नहीं किया जायगा। 'ज' अभी सगाई कराने के लिये सहमत नहीं है। परन्तु तुम इस विषय में चिन्ता न करो। उसकी शर्तें यह हैं कि वह विवाह उस समय करेगा जब वह स्वयं अपनी कमाई करने लगेगा—साथ ही वह विवाह की रस्मों में भी सुधार करना चाहता है। सो जो-जो भी उचित सुधार वह कहे, वे तो हमें करने ही पड़ेंगे।

वास्तव में 'ज' विवाह के समय से पूर्व अपने को बाँधना नहीं चाहता। यह पत्र उसने पढ़ लिया है।

घर में तू-तू, मैं-मैं

घर में एक कान्फ्रेंस हुई। तीन-चार सम्बन्धी इकटठे हुए—

लड़के की मुसीबत आ गई, "या 'हां' कर, या 'ना' कर।" माँ ने कहा, "अगर 'ना' की तो मैं घर से निकाल दूंगी और पढ़ाई का कोई खर्च नहीं दिया जायगा।" भाई (ताऊ का बेटा) ने कहा, "तू तो है ही पागल, तुझे तो अक्ल ही नहीं।" लड़के को विवश करके उससे 'हां' करवाने का प्रयत्न किया गया। लड़का कह बैठा, "आपने किससे पूछ कर वचन दिया था ?" "बच्चों से भी कभी किसी ने पूछा है ? हमें क्या मालूम था कि तू इतना उद्दण्ड है और ऐसे नखरे करेगा !"

लड़का पराधीन था—विवश हो गया और एक पत्र में अपने विचार लिख कर भेज दिये।

लड़के का पत्र

पिछले तीन-चार वर्षों से मैंने अपने विवाह के विषय में कोई बात नहीं चलने दी—कारण कि मैं अपने विवाह की रस्मों में जहाँ तक सम्भव हो सुधार करना चाहता हूँ। परन्तु चूँकि इस सम्बन्ध में मैं अभी तक अपने विचार पुष्ट नहीं कर सका हूँ और केवल पढ़ता, सोचता और विचार करता रहा हूँ, इसलिये निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता कि इस सम्बन्ध में मेरे निश्चित विचार क्या होंगे। केवल यही कारण है जिससे मैं अभी तक अपने विवाह की बात करने से इन्कार करता रहा हूँ। जब तक इस विषय में मेरे विचार निश्चित न हो जायं तब तक मैं अपने को बन्धनों में नहीं जकड़ना चाहता, क्योंकि एक बार बन्धन में पड़ने के पश्चात् दूसरे पक्षवालों को किसी भी सुधार के लिये सहमत करना कठिन

होगा। इसीलिये मैंने यह धारणा की थी कि पहले सुधारों के विषय में अपने विचारों को निश्चित कर लूँ, फिर कोई विवाह-सम्बन्ध करने का विचार करूँगा और सम्बन्ध होने से पहले अपनी सभी शर्तें स्वीकार करा लूँगा। मैंने सुधार करने का प्रण किया हुआ है तथा मेरे मतानुसार वे सुधार विद्रोहात्मक अथवा लज्जास्पद न होंगे। मैं यह भी स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि सुधार की योजना प्रस्तावित करते समय मैं यह कदापि नहीं सोचूँगा कि लोग मेरे विषय में क्या-क्या कहेंगे।

इसी कारण मैंने अपने को 'निकम्मा' और उद्दण्ड कहलवाया है। परन्तु अब जब भाई साहब ने यह विश्वास दिलाया है कि वे मेरे प्रस्तावित सुधारों के विषय में डाक्टर साहब को सहमत करा लेंगे, तो मैं भी निम्नलिखित शर्तों पर पिता जी के दिए हुए वचन को पूरा करने के लिये तैयार हूँ :—

१. यह सम्बन्ध तभी होगा जब यह निश्चित हो जाए कि हम दोनों का स्वास्थ्य उस समय पूर्ण रूप से ठीक है और कोई पैतृक रोग हम दोनों में से किसी को नहीं है।

२. जब तक मैं स्वयं कमाई न करने लगूँगा तब तक न तो सगाई करूँगा और न ही विवाह—और कम से कम अपनी पढ़ाई समाप्त करने के ६ महीने पश्चात।

३. लड़की अच्छी पढ़ी-लिखी होनी चाहिए।

४. सगाई से पहले किसी प्रकार की रस्म न की जावे।

५. जो भी सुधार मैं विवाह अथवा सगाई के सिलसिले में

रक्खूंगा वे सभी मानने पड़ेंगे। इस समय मैं इस विषय में कुछ भी नहीं कह सकता; केवल इतना ही विश्वास दिला सकता हूं कि वे सभी विवाह को सरल और आडम्बर-हीन बनाने के लिये ही होंगे। मैं रुपया आदि नहीं मांगूँगा और न ही दहेज को आने दूँगा।

६. जब तक सगाई न हो जावे तब तक इस सम्बन्ध में बहुत ढिंढोरा न पीटा जाय।

यदि उपरोक्त सभी शर्तें पूरी हो जायं तो मैं भी अपना वचन पालन करूँगा और अन्य कोई सम्बन्ध स्वीकार न करूँगा।

पुत्र की ओर से पिता को पत्र

मैंने अपने पहले पत्र में यह स्पष्ट रूप से लिखा था कि मेरा यह आशय नहीं है कि मैंने वहाँ सगाई कर ली है, परन्तु मैं यह देख रहा हूँ कि सारे परिवार में यह बात फैली हुई है कि मैंने वहां सगाई तय कर ली है।

नितान्त असत्य यह बात फैलने के कारण मेरे मन में बहुत क्रोध आता है। मैंने तो यह शर्त रक्खी हुई थी कि विवाह के समय से पहले सगाई कदापि नहीं कराऊँगा। यह शर्त रखने का भी केवल यही तात्पर्य था कि यदि शेष सभी शर्तें पूरी न हो सकें तो हम वहाँ सम्बन्ध रखने के लिये बाध्य न हों। साथ ही लड़की की पढ़ाई, विवाह की सभी रस्मों तथा और भी कुछ फुटकर बातों के विषय में मेरे विचार पूर्णतया परिपक्व नहीं हुए थे, इस कारण उस समय मैं सगाई कराना नहीं चाहता था। परन्तु

मेरे दुर्भाग्य से मेरी "तय हुई सगाई" की बात इतनी अधिक फैल चुकी है कि समझ में नहीं आता कि इस असत्य बात को कैसे असत्य प्रमाणित करूँ ? ऐसा प्रकट किया जा रहा है जैसे मेरे हाथ कट चुके हों, यद्यपि यह सब ग़लत है। अब यदि वहाँ सम्बन्ध न हुआ तो सब लोग कहेंगे कि मैंने लड़की छोड़ दी है, जबकि अभी तक मैं इस सम्बन्ध के विषय में सहमत भी नहीं हुआ था। मैंने केवल एक लिखत की थी और वह भी उसमें लिखी हुई सब शर्तों के ऊपर निर्भर थी। परन्तु आप, भाई साहब तथा भाभी जी, मेरे सन्मुख भी सब लोगों से कहते रहते हैं कि मेरी सगाई हो गई है।

इन सभी बातों से मेरा हृदय बहुत दुखी है। मेरे लिये सुखी घरेलू जीवन का मूल्य लिखित प्रतिज्ञाओं तथा कोरे वचनों से कहीं अधिक है। मेरा स्वभाव इस प्रकार का है कि यदि मुझे ऐसी पत्नी मिल जाए जिससे मेरा निभाव न हो सके और हर समय झगड़ा और विवाद होता रहे—तो न जाने मैं तंग आकर क्या कर बैठूं।

मुझे इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं है कि जो सज्जन मध्यस्थ बन कर यह सम्बन्ध लाए हैं—वे सब हमारे निकट-सम्बन्धी हैं, और यदि हमने अस्वीकार कर दिया तो वे सब सारी आयु के लिये हम से रुष्ट हो जायेंगे। मुझे जब तक पूर्ण विश्वास न हो जायगा कि अमुक लड़की मेरे लिये हर तरह योग्य है तब तक मैं विवाह कराने के लिये कदापि सहमत न हूँगा। मैं आयु-

पर्यन्त कंवारा रहने के लिए तैयार हूँ परन्तु पूर्णतया सन्तुष्ट हुए बिना तथा अपना इच्छा के विरुद्ध कभी भी विवाह कराने के लिये तैयार नहीं हूँ।

फिर वही झगड़ा

लड़के के एम०ए० की परीक्षा पास करने के पश्चात् लड़की वालों ने लिखा कि विवाह की तिथि निश्चित कर दी जाए। अब तो लड़के की नौकरी भी लग चुकी है। इससे झगड़ा फिर नए सिरे से शुरू हो गया। लड़का कहता था कि मैं लड़की के विषय में हर प्रकार से सन्तुष्ट होना चाहता हूँ परन्तु कोई मार्ग नहीं सूझता कि यह किस प्रकार हो।

चाचा की ओर से भतीजे को पत्र

मेरी यह इच्छा है कि 'ज' की बहनें लड़की को मिल लें और फिर निश्चय कर लिया जाए। इसका तुम स्वयं प्रबन्ध कर सकते हो कि वे कहाँ और कैसे मिलें।

भतीजे की ओर से चाचा को पत्र

मैं 'ज' के इस विचार को बिलकुल पसन्द नहीं करता कि उसकी बहनें जाकर लड़की को देखें, क्योंकि उन्हें न कोई अनुभव है और न उन्होंने अभी संसार देखा है—इसके साथ ही जैसी वे हैं वैसा ही मैं हूँ—यदि आप को मेरे ऊपर विश्वास नहीं है तो उनके देखने के पश्चात् भी आपकी सन्तुष्टि न होगी। इसलिये अच्छा यही होगा कि आप, चाची और 'ज' मेरे साथ चलें और लड़की को देख लें।

और भी जो-जो शर्तें हों सभी लिख दीजिए जिस से मैं उन्हें पूरा २ उत्तर दे सकूं।

चाचा की ओर से भतीजे को पत्र

मैं अथवा तुम्हारी चाची लड़की के स्वास्थ्य अथवा रंग-रूप के विषय में कुछ पूछताछ नहीं करना चाहते। (मुझे बड़ा दुःख है कि मैंने अपनी इच्छा के विरुद्ध यह शब्द लिखे हैं क्योंकि ऐसा विचार भी मन में कभी नहीं आना चाहिये।)

मेरी सन्तुष्टि का कोई प्रश्न नहीं, मुझे तो केवल 'ज' को सन्तुष्ट करना है और उसकी सन्तुष्टि उसकी बहनें ही कर सकती हैं क्योंकि वह कहता है कि उसकी बहनें उसके विचारों को समझती हैं और उसके दृष्टिकोण से परख सकती हैं। वे लड़की के साथ कुछ दिन रहना चाहती हैं तथा उससे परिचय प्राप्त करना चाहती हैं। तुम उन्हें जहाँ भी उचित समझो लड़की के पास ले जा सकते हो। 'ज' स्वयं लड़की को नहीं देखना चाहता। उसकी बहनों को भले ही अनुभव न हो—उन्होंने संसार न देखा हो—परन्तु उन्हें फ़ैसला नहीं करना। उन्हें तो केवल लड़की से मिलना है, और कुछ आवश्यक बातों का पता लगाना है।

भतीजे की ओर से चाचा को पत्र

मैं यह बहुत अन्याय समझता हूँ कि 'ज' की बहनें लड़की के पास जाकर कुछ दिन रहें और उसके भाग्य का निर्णय करें। यदि हम उनकी स्थिति में होते तो क्या यह सब सह सकते?

मैं मानता हूँ कि हमारे सामाजिक नियमों में सुधार की

आवश्यकता है, पर इन सुधारों का शिकार लड़कियों को ही क्यों बनाया जावे, इससे तो उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाएगी। इससे तो यही अच्छा है कि लड़का स्वयं लड़की को देख ले, बजाय इसके कि उसकी बहनें देखने के लिये जाएं।

पाश्चात्य देशों में लड़के-लड़कियां स्वयं एक दूसरे का चुनाव करते हैं, उनको एक साथ रहने के कई अवसर प्राप्त होते हैं। उन्हें शील, स्वभाव, गुणों एवं अवगुणों का भली प्रकार ज्ञान हो जाता है, परन्तु फिर भी आश्चर्य की बात यह है कि वे विवाह अधिकतर असफल हो जाते हैं।

जब घर में अतिथि आए हों तो एक शरारती बच्चा भी भला बन जाता है। एक शैतान भी एक सप्ताह के लिए संत बन सकता है तो आप इस परीक्षा से क्या आशा रख सकते हैं? मानव-स्वभाव का माप-तोल किसी मशीन द्वारा तो हो नहीं सकता। फिर भी आश्चर्य की बात है कि हम एक व्यक्ति के स्वभाव की परख उन अनजान हाथों के द्वारा कराना चाहते हैं, जिनका दृष्टि-कोण ही शायद भिन्न हो।

ऐसा मालूम होता है जैसे कोई अनजान व्यक्ति लड़की की भावनाओं की परख करेगा और उसी परख पर उसका निर्णय होगा। यदि लड़की ऐसे व्यवहार के लिये न माने तो? फिर क्या इसी बात पर उसको अस्वीकार कर दिया जायगा? अच्छा, 'ज' की बहनें वहां गईं भी और लड़की ने बाहर निकलने से इन्कार कर दिया या संकोचवश अथवा अपमान के डर से उनको सीना-

पिरोना, खाना पकाना तथा गाना-बजाना आदि कुछ भी करके न दिखाया तो क्या इसका यह अर्थ होगा कि वह अयोग्य और अनजान है और इसलिये यह सम्बन्ध छोड़ना होगा ? यदि वह किसी भी बात में कमज़ोर दिखाई दी तो वही बात उसके विरुद्ध जायगी। क्या किसी मानवी दुर्बलता को आँखों की ओट नहीं किया जा सकता ? और क्या यह सब लड़के की स्वार्थपरता नहीं ? क्या लड़के को भी सुधारने की आवश्यकता नहीं है ?

इसको कौन सुधार कह सकता है ? मैं दृढ़ता से कहूँगा कि यह सुधार नहीं वरन एक पागलपन है। क्या यह अन्याय नहीं ? लड़की बाज़ारों में बिकने वाला सौदा नहीं है उसका भी हृदय होता है और हृदय में उमंगें होती हैं।

मुझे 'ज' की यह मांग बड़ी निरर्थक प्रतीत होती है और कई बार आश्चर्य होता है कि वह विवाह का आधार क्या समझता है। क्या वह समझता है कि विवाह से पहले ही एक-दूसरे के प्रति रुचि तथा प्रेम हो जावे ?

उसको ठंडे दिल से सोचना चाहिये कि जो मार्ग उसने अपनाया है, क्या वह ठीक है ? क्या उसे विश्वास है कि इस प्रकार वह लड़की का प्रेम प्राप्त कर सकेगा ? वह प्रेम के नियमों को भूल रहा है। यदि लड़की इस परीक्षा में पास भी हो जावे, तब भी निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि वह अपने विवाहित-जीवन में भी उसी प्रकार रहेगी। परखने का यह ढंग ठीक नहीं है। मैं 'ज' से भी कहूँगा कि वह सत्य से दूर न भागे

और अपनी बुद्धि को ठिकाने रक्खे, क्योंकि हमारा यह सिद्धान्त होना चाहिये कि, "मैं मनुष्य हूँ और जिन बातों का मानव-स्वभाव से सम्बन्ध है, वे मेरे लिये अस्वाभाविक नहीं हो सकतीं।"

लड़के के लिए लड़की के माँ-बाप का, उनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का तथा लड़की के स्वास्थ्य, रूप-रंग और गुणों का अच्छा होना ही पर्याप्त होना चाहिये। क्या ये बातें सबसे अधिक आवश्यक नहीं हैं ?

यदि वह दहेज तथा अन्य वैवाहिक रीतियों में सुधार करना चाहता है, तो बहुत अच्छा है और उनका कोई विरोध नहीं कर सकता। परन्तु दूसरे लोगों के भी हृदय है, वे भी मनुष्य हैं और उनके साथ मनुष्योचित व्यवहार ही होना चाहिये। दूसरों के हृदय पर भी चोट लग सकती है।

मुझे स्पष्ट लिखें कि आप तथा 'ज' इस सम्बन्ध को स्वीकार करना चाहते हैं या नहीं, जिससे पक्का निर्णय किया जा सके।

लड़के की ओर से भाई को पत्र

अभी तक मैं पीछे ही रहा था और आपकी बात-चीत, पत्र-व्यवहार सभी पिताजी से ही होते रहे हैं। पर अब मामला इतना बिगड़ गया है कि मुझे निर्भय हो कर दिल खोल कर अपने विचारों को स्पष्ट कर देना चाहिये।

आपने पिताजी को लिखा है कि, "पहले सब कुछ तय हो चुका था।" परन्तु यह असत्य है। मैंने अपने पत्र में यह लिखा था कि "मैंने अपने को नीचे लिखी शर्तों पर, पिताजी के

दिए हुए वचन को पूरा करने के लिये प्रेरित कर लिया है।" पिता जी ने आप को केवल यही वचन दिया था कि, "आप को सूचित किए बिना अन्य किसी स्थान पर सम्बन्ध नहीं करेंगे।" मुझे पता है कि इसका अभिप्राय सभी हाँ ही समझते रहे, परन्तु हमारा अभिप्राय स्पष्ट था।

आप यह स्वीकार करते हैं कि हमारे सामाजिक रीति-रिवाजों में सुधारों की बहुत आवश्यकता है। फिर ये सुधार किस प्रकार किये जा सकते हैं? एक-एक मिलकर ही समाज बनता है तथा सुधार भी कुछ गिनती के ही मनुष्य कर सकते हैं जिनके हृदय में वीरता होती है। सारे मनुष्य तो एकत्रित होकर सुधार नहीं करने लग जाते। सामाजिक रीतियों के इतिहास में यह उदाहरण कहीं नहीं मिलता कि किसी देश अथवा जाति ने सामूहिक रूप से झट-पट पुरानी रीतियों को छोड़ दिया हो। अकेला-दुकेला आदमी ही सुधार का काम कर सकता है और करता रहा है। जब मेरे जैसा कोई विद्रोही स्वभाव का व्यक्ति कुछ करना चाहता है तो दूसरे उसके मार्ग में रोड़ा क्यों अटकाते हैं? लोग भले ही टीका-टिप्पणी करें, हँसी उड़ाएं, परन्तु वे मेरे मार्ग में रोड़े क्यों अटकाते हैं? मैं दूसरों को अपने साथ नहीं मिला सकता; मैं तो केवल इतना कर सकता हूँ कि अपने विचारों का प्रचार करूँ और वही मैं कर रहा हूँ। क्या आप चाहते हैं कि मैं अपने सिद्धान्तों और विचारों का ही विवाह के लिए बलिदान कर दूँ।

परन्तु मैं यह कदापि नहीं कर सकता, भले ही मेरे सगे-सम्बन्धी मुझ से रुष्ट हो जायें।

आपने अपने पत्र में लिखा है कि पश्चिम के लोग भी विवाहित जीवन को सुखी बनाने में असफल रहे हैं। यदि असफल होने से आपका अभिप्राय 'तलाक़' की अधिक संख्या से है, तो मैं यह कहने के लिये तैयार हूँ कि यदि हमारे देश में भी तलाक़ देने की रीति प्रचलित हो जाए तो यहाँ वहाँ से कई हज़ार अधिक तलाक़ हों और यदि असफल होने से आपका अभिप्राय दुःखदायी घरेलू जीवन से है, तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमारे देश में स्थिति कहीं अधिक शोचनीय है; हां, यहां संसार से उदासीनता और संतोष में दिन काट दिये जाते हैं। हमारे यहाँ दुःखदायी घरेलू जीवन के बहुत थोड़े उदाहरण संसार के सम्मुख आते हैं, पर उधर झट प्रकाशित हो जाते हैं। हमें उस समय तक पूर्ण रूप से सुख नहीं मिल सकता जब तक स्त्री-जाति को समानाधिकार न मिलें। संसार बहुत तीव्र गति से उस आदर्श की ओर पहुँच रहा है, चाहे हम अभी इस मामले में बहुत पिछड़े हुए हैं।

मेरी माँग केवल यही है कि मैं लड़की के विचारों, आदर्शों और गुणों के विषय में परिचय प्राप्त करना चाहता हूँ। विवाह कोई छोटी सी बात नहीं, जिसका एक मिनट में निर्णय हो सके। आपके लिए तथा मेरे माता-पिता के लिए तो 'यहाँ' अथवा 'वहाँ' सम्बन्ध कर देने भर की ही बात है, परन्तु मेरे लिए यह सारे जीवन का प्रश्न है। जिनको आप जीवन-पर्यन्त जोड़ना चाहते

हैं क्या उनकी भावनाओं और विचारों को आप एकदम आँखों से ओझल कर देना चाहते हैं ? मेरी यह इच्छा है कि लड़की और लड़के को स्वयं अपने विषय में निर्णय करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। आने वाले समय का किसी को पता नहीं, पर क्या इसका यह अर्थ है कि लड़की और लड़के को एक दूसरे के आज के स्वभाव, विचारों और रुचियों का भी पता न हो ? यह कितनी अनुचित बात है।

मुझे इस बात का ज्ञान नहीं है कि लड़की के मां-बाप उसको अपना जीवन-साथी चुनने के विषय में कितनी स्वतन्त्रता देने को तैयार हैं, पर मुझे इस बात का विश्वास हो जाना चाहिये कि उसकी सलाह ली गई है और उसने खुले रूप में स्वीकृति दे दी है। यह कोई अयोग्य और हेय माँग नहीं है। बड़ी लड़कियों से आजकल इसी तरह पूछा जाता है। मेरी सगी बहनों से भी इसी प्रकार पूछा गया है। यह कोई अनहोनी बात नहीं है। चूँकि मैं दूसरे के विचारों और भावनाओं का आदर करता हूँ, इसलिये इस बात पर जोर दे रहा हूँ।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि इन बातों की तसल्ली कौन कराए ? मुझे इस सिलसिले में अभी तक ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला है जो इस विषय में मेरी तसल्ली करा दे, और इन बातों की तसल्ली किये बिना मैं कहीं भी विवाह कराने के लिए तैयार नहीं हूँ। मेरे कुछ शिक्षा-सम्बन्धी आदर्श बन चुके हैं—और यदि दुर्भाग्यवश मुझे कोई ऐसी पत्नी मिल जाए, जिसको घरेलू

काम-धन्धों के अतिरिक्त और कुछ भी न सूझता हो तो हमारा जीवन किस प्रकार सुखी हो सकता है ? दूसरे, सामाजिक सुधारों के विषय में मेरे विचार बहुत क्रान्तिकारी हैं, और यदि वह पुराने विचारों की हुई तो हमारी कैसे निभ सकती है ? मेरे विचारों को तो सभी जानते हैं, पर मुझे उसके विचारों का कुछ भी पता नहीं।

केवल इसीलिये मैं अपनी बहनों को वहां भेजने की इच्छा रखता था कि वे इन बातों की तसल्ली कर आएं। लड़की के दिल में मेरे प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिये उनको वहां नहीं जाना था। मेरी यह भी इच्छा नहीं थी कि वह उन्हें सीना, पिरोना, खाना पकाना और गाना-बजाना आदि करके दिखाए। मुझे तो इन बातों का ध्यान भी नहीं था। मेरा अभिप्राय तो केवल वही था जो मैंने ऊपर लिखा है। मैं मानता हूँ कि मेरी बहनें शायद मेरा आशय पूरा न कर सकें, क्योंकि, जैसा कि आप कहते हैं कि हो सकता है कि लड़की संकोचवश उनसे बात भी न करे। मैंने तो उनके नाम तब बताए थे जब कि पिता जी ने पूछा था कि मुझे किन-किन पर विश्वास है और कौन मेरे विचारों को भली भाँति समझता है। यदि आप कोई और सुगम उपाय मेरी तसल्ली के लिए बता सकते हैं तो मैं उस पर विचार करने के लिये तैयार हूँ।

मैं आपकी एक बात नहीं समझ सका। आपने लिखा है, "क्या वह यह चाहता है कि विवाह से पूर्व ही एक-दूसरे के प्रति प्रेम और रुचि हो जावे ?" क्या आपका यह अभिप्राय है कि लड़की और लड़के को उनकी इच्छा के विरुद्ध बांध देना चाहिए ?

क्या इस आधार पर विवाह के पश्चात् परस्पर प्रेम हो सकता है ? यह अजीब तरीक़ा है !

शेष सुधारों पर तो फिर विचार कर लिया जायगा, परन्तु सब से पहला और आवश्यक सुधार तो यही है कि लड़के और लड़की की पूरी-पूरी सलाह ली जाए। नौ वर्षों से यह झगड़ा चल रहा है। मेरा हृदय बहुत दुःखी है। मैं 'ना' करने की दलेरी भी नहीं कर सका, क्योंकि यह डर था कि कहीं ऐसा करने से एक निर्दोष हृदय पर चोट न लगा बैठूं, जिसका इस झगड़े में कोई हाथ नहीं। उधर, आँखों पर पट्टी बांधकर 'हां' करने का साहस भी नहीं है, क्योंकि मैं हर प्रकार से अपनी तसल्ली करना चाहता हूँ। बस यही अन्तर्द्वन्द्व मेरे हृदय में कई वर्षों से चल रहा है। मैं नहीं जानता कि इसका अन्त क्या होगा। मेरी यही इच्छा है कि आप मेरे विचारों और भावनाओं को समझने का प्रयत्न करें।

परिस्थिति में परिवर्तन

इसके पश्चात् लड़के की और भाई की दो बार बड़ी लम्बी-चौड़ी बात-चीत हुई। वही लड़का जिसकी आज से चार वर्ष पूर्व बात भी नहीं सुनी जाती थी, अब उसके विचारों को समझने का प्रयत्न किया जाने लगा। चार वर्ष पूर्व लड़का एफ० ए० पास ही था और उसको सब बच्चा ही समझते थे। अब लड़का एम० ए० कर चुका था और स्वयं अपनी कमाई करने लगा था, इसलिए अब उसकी बात को निरादर से ठुकराया नहीं जाता था।

दोनों ने मिलकर ठंडे दिल से बात-चीत की, कई भूलें दूर

हो गई और दोनों ने ही एक-दूसरे को समझ कर विचार-विनिमय का नया अध्याय प्रारम्भ किया।

लड़के की ओर से भाई को पत्र

अब जब आपने मुझे 'भ' के विचारों, भावनाओं तथा रुचियों के विषय में विश्वास दिलाया है, तब उसको जीवन-साथी बनाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि विवाह की तिथि बहुत पहले क्यों निश्चित कर दी जाए। मैं इस बात के पक्ष में नहीं हूँ कि विवाह में दूर तथा निकट के सम्बन्धियों और मित्रों आदि को एकत्रित किया जाए। हम अपने घर में इस प्रकार लोगों को एकत्रित नहीं करेंगे। जब विवाह में किसी को बुलाना ही नहीं, तो इतने दिन पहले तिथि निश्चित करने की क्या आवश्यकता है? केवल एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि दोनों ही ओर के लिये दिन और समय उपयुक्त हों। इसलिए जब विवाह का समय आएगा तब डाक्टर साहिब से पूछा जा सकता है कि कौन-से दिन उनके लिये उपयुक्त होंगे और फिर निश्चित तिथि का पता भी कुछ दिन पहले दिया जा सकता है। वे उन दिनों जहां भी होंगे, वहीं विवाह-संस्कार किया जा सकता है।

आभूषणों और दहेज के विषय में मैंने निवेदन किया था कि मैं सिद्धान्त रूप से ही इनके विरुद्ध हूँ। मैं आपके इस विचार से सहमत हूँ कि ये वस्तुएं मां-बाप की सम्पत्ति में से लड़की का भाग-सा बन गई हैं। मेरे मतानुसार तो, मां-बाप की सम्पत्ति पर

लड़के-लड़की का समान अधिकार होना चाहिये। जब तक तत्सम्बन्धी कानून में परिवर्तन नहीं हो जाता तब तक 'वसीयत' की सहायता से ही इस कमी को पूरा किया जा सकता है। अस्तु, मेरा अभिप्राय केवल यह है, कि डाक्टर साहब की इच्छा 'भ' को कुछ नकद रुपया देने की है, तो यह आवश्यक नहीं है कि वह रुपया विवाह के अवसर पर ही दिया जाए; उससे पूर्व अथवा पश्चात् दिया जा सकता है। आभूषण बिल्कुल नहीं होंगे। उसको अपने साथ प्रतिदिन के पहनने के कपड़े तथा नहाने-धोने की आवश्यक वस्तुएं ही लानी चाहिएं। मैं इसके विरुद्ध हूँ कि विवाह के अवसर पर नए-नए सूट सिलवाए जायं। मैं स्वयं भी कोई कपड़े नहीं सिलाऊँगा, तथा मेरी यह भी इच्छा है कि लड़की के भी न सिलाए जायं। विवाह-संस्कार के समय किसी रस्मी पोशाक की आवश्यकता नहीं और न ही सगे-सम्बन्धियों को कपड़े, रुपये या 'भाजी' देनी हैं।

आपने यह भी कहा था कि हमारे देश में विवाह से पहले लड़कियों का पहनना-ओढ़ना अच्छा नहीं हो सकता। इसका एक कारण यह है कि मां-बाप को लड़की के दहेज के लिये धन जोड़ने की चिन्ता लगी रहती है, और इसके लिये उसकी पढ़ाई का भी बलिदान कर दिया जाता है और भोजन भी स्वादिष्ट नहीं दिया जाता। चूंकि 'भ' के मां-बाप को इस प्रकार की कोई चिन्ता नहीं इसलिये उसका रहन-सहन इस समय भी बुरा नहीं। इसलिये उसके लिये नए वस्त्रों के सिलवाने की कोई आवश्यकता नहीं होनी

चाहिए। जैसे कपड़े वह वहां पहनती है वही साथ ला सकती है।

विवाह के समय परदा बिल्कुल नहीं होगा। न लड़की महंदी लगाएगी और न ही चूड़ा पहनेगी। मैं भी सेहरा नहीं बांधूंगा, तथा न ही छन्द आदि की रस्म होनी चाहिये। आदर-सत्कार बिल्कुल सादा और स्वच्छ हो। झंडियां अथवा प्रकाश आदि कोई भी दिखावे की वस्तु न हो। मेरी यह बड़ी इच्छा है कि दोनों ओर के व्यक्ति मिल कर भोजन करें; बजाय इसके कि वे लोग तो सेवा करें और हम लोग बैठ कर भोजन करें। मिलनी की व्यर्थ और खर्चीली रीतियों के स्थान पर परस्पर परिचय करने का यह ढंग बहुत अच्छा है। यदि उस ओर की स्त्रियां इतनी दलेरी नहीं कर सकतीं तो दोनों ओर की स्त्रियां एक स्थान पर और पुरुष दूसरे स्थान पर एक साथ मिल कर खा सकते हैं। यह बहुत ही अच्छा हो यदि दोनों ओर के एकत्रित लोगों की गिनती दर्जन, डेढ़ दर्जन से अधिक न हो।

बारात के विषय में मैं पहले ही आपको बता चुका हूँ कि वास्तव में 'बारात' कोई नहीं होगी। केवल दो-चार व्यक्ति होंगे जो बिना किसी झंझट के ही डाक्टर साहब के घर एक रात विश्राम कर सकते हैं। दूसरी ओर भी बस इतने ही व्यक्ति होने चाहियें।

विवाह संस्कार के विषय में भी मेरे कुछ विचार हैं। मुझे नहीं पता कि 'फेरे' आवश्यक हैं अथवा नहीं, पर मैं यह रस्म करने के लिए इस शर्त पर तैयार हूँ कि हम दोनों साथ २ चलेंगे,

हम न तो पल्ला पकड़ेंगे, और न ही दोनों में से किसी का मुँह ढका हुआ होगा। विवाह की रस्म बहुत सरल और संक्षिप्त होनी चाहिए। मेरी राय है कि सायंकाल के समय डाक्टर साहब के घर पहुँचें और दूसरे दिन प्रातःकाल जल-पान करके लौट आएं।

एक और भी निवेदन करदूं कि विवाह के दो, तीन दिन पश्चात् लड़की के मायके जाने में मुझे कोई लाभ दिखाई नहीं देता। हमारी जब इच्छा होगी, जाएंगे; रस्मी आना-जाना मुझे अच्छा नहीं लगता।

भाई की ओर से लड़के को पत्र

दहेज—नवीन विचार-धारा से बहुत प्रभावित होने के कारण आपने दहेज का वास्तविक अर्थ नहीं समझा। यह रीति स्त्री जाति के अधिकारों की रक्षा करने के लिए है। आप जैसे नौजवानों को, जो स्त्री-जाति की उन्नति चाहते हैं, इस रीति का पक्ष लेना चाहिये। परन्तु दुर्भाग्यवश आजकल के नौजवानों ने इसको एक सौदा बना लिया है।

आभूषण– यह स्त्री-धन है, जो लड़की को कुसमय में काम आने के लिए दिये जाते हैं। यदि आप चाहते हैं कि लड़की को आभूषण न दिए जाएं तो मेरी इच्छा है कि लड़की को रुपये नकद दे दिये जाएं।

पर्दा—प्राचीन धर्म के अनुसार पर्दा वर्जित है, परन्तु लड़कियाँ स्वभाव से ही लज्जाशील होती हैं तथा मुँह खुला होने के कारण

सभी की दृष्टि उस पर पड़ेगी, इसलिये लड़की के लिये बड़ी कठिनाई हो जायगी। इसलिये लड़की की इच्छा के अनुसार नाम-मात्र का पर्दा किया जायगा, जिस पर आप को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। विवाह के पश्चात् लड़की का पर्दा करना या न करना आपके या लड़की के हाथ में है, या आपके मां-बाप की इच्छा पर निर्भर है।

सेहरा—लड़की की मां की बड़ी इच्छा है कि सेहरा अवश्य बांधा जाए, चाहे थोड़ी देर के बाद उसे उतार दिया जाए।

लड़के की ओर से भाई को पत्र

आपने तो केवल आभूषणों को ही स्त्री-धन समझ लिया है, परन्तु स्त्री-धन तो वह होता है जो "विदा के समय लड़की को उसके पिता और भाइयों की ओर से दिया जाए। ये वस्तुएं तथा इसके पश्चात् दिए गए उपहार और उसके पति की ओर से मिली हुई वस्तुओं के ऊपर उसकी संतान का अधिकार है—भले ही वह अपने पति के जीते जी मर जाए। हिन्दू कानून के अनुसार यह सम्पत्ति विवाहिता स्त्री की अपनी होती है, परन्तु उसके पति को अधिकार है कि आपत्ति के समय उनका उपयोग कर ले" ('मानव-विवाह का इतिहास'-पृष्ठ ४११)। इसलिये केवल आभूषण ही स्त्री-धन में सम्मिलित नहीं हैं, वरन् ऊपर लिखी हुई सभी वस्तुएं। यदि इन सभी वस्तुओं के देने का यही अभिप्राय था तो पुरुष के बनाए हुए इस नियम के अन्तिम भाग ने इसका सारा प्रभाव नष्ट कर दिया है ("परन्तु उसके पति को अधिकार है कि आपत्ति के

समय उनका उपयोग कर ले।") हम जानते ही हैं कि 'स्त्री-धन' के ऊपर स्त्रियों का वास्तव में कितना अधिकार होता है। इसलिये मैं कहता हूँ कि डाक्टर साहब को जो भी रुपया नक़द देना है वह 'भ' को दें—मुझे न दें।

फेरों के समय पर्दा करने के सम्बन्ध में आपने कहा है कि लड़कियाँ अधिक लज्जाशील होती हैं, इसलिए वे सकुचा जाती हैं। समझ में नहीं आता कि एक चतुर और समझदार लड़की समानता के अधिकार लेने से क्यों इन्कार करे।

क्या लड़कियाँ वीर नहीं हो सकतीं? मुझे कई पढ़ी-लिखी और समझदार लड़कियों ने विश्वास दिलाया है कि वे एक मिनट के लिये घूंघट नहीं निकालना चाहतीं—केवल बड़ों के डर से ही वे ऐसा करती हैं। क्या 'भ' से इस विषय में पूछा गया है? यदि वह आजकल के विचारों की है, जिसका कि आपने मुझे विश्वास दिलाया था, तो उसे घूंघट को कदापि सहन नहीं करना चाहिए। आप स्वयं मानते हैं कि प्राचीन काल में पर्दे की प्रथा नहीं थी। फिर पर्दे की प्रथा दूर करने में अब कौनसी बाधा है? विशेषकर उस समय कोई भीड़ तो होगी नहीं और केवल दर्जन, डेढ़ दर्जन व्यक्ति अधिक से अधिक होंगे।

सामाजिक रीति-रिवाज समय-समय पर बदलते रहते हैं। विद्वानों का भी इस विषय में एक मत नहीं है। भिन्न-भिन्न समयों के विद्वान् अपने समय की परिस्थिति के अनुसार प्रथाएं बाँध देते हैं। एक २ दो २ करके नए विचार और नई रीतियाँ आरम्भ

होती हैं और फिर जनता स्वयं देखा-देखी उसी ओर चल पड़ती है। इस समय आप मुझे समय के प्रवाह से बहुत आगे बढ़ा हुआ समझते हैं, परन्तु मेरे विचारानुसार मैं समय की गति के साथ हूँ।

सेहरा एक बहुत प्राचीन प्रथा की निशानी है। सम्भवतः इसका यह अभिप्राय था कि 'दृष्टिदोष' (नज़र) न लगे, और द्वेष तथा बुरी नीयत रखने वाले लोग कुप्रभाव न डाल सकें। इसे शरीर के सबसे अधिक दृष्टिगोचर होने वाले भाग पर पहनाया जाता था, जिससे किसी की कुदृष्टि मुख के स्थान पर सेहरे पर पड़े और नव-विवाहित युगल पर बुरी नज़र का कोई बुरा प्रभाव न पड़ सके ('हिन्दू रस्म-रिवाज' पृष्ठ २२६)। यही है सेहरे का अभिप्राय।

क्या आप यह आशा रखते हैं कि मैं इस प्रथा को चालू रखने के लिये सहमत हो जाऊंगा ? मुझे विश्वास है कि यदि लड़की की माता जी को इसका अभिप्राय समझाया जाए तो वे भी अब इसके लिये आग्रह न करेंगी। हार पहनाए जाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं, परन्तु वे विवाह की रस्म पूर्ण हो जाने के पश्चात् पहनाए जायें और हम दोनों के माता-पिता हमें हार पहनाएं।

बारात के विषय में मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ कि मैं इसे आवश्यक नहीं समझता कि जो सम्बन्धी दूर रहते हैं वे भी छुट्टियाँ ले कर और कष्ट उठा कर किसी लड़के का विवाह सम्पन्न कराने के लिये आएं। क्या विवाह उनके आए बिना नहीं हो

सकता ? क्या घर में बैठे हुए मां-बाप, बहन-भाई पर्याप्त नहीं ?

मैंने पिछले पत्र में मिलनी के विषय में लिखा था। उससे मेरा अभिप्राय स्त्रियों की मिलनी (जिस समय बहुत कुछ लिया-दिया जाता है) तथा पुरुषों की मिलनी से था। मैंने इस रस्म के लिये भी मना कर दिया था।

आपने दुकाव के विषय में लिखा है, उस लए निवेदन है कि गली अथवा बाज़ार में से जलूस निकालना उसी समय शोभा देता है जब दोनों ओर बड़ी भीड़-भाड़ हो और दर्शक लोग खड़े हों। परन्तु जब हमारे विवाह में केवल दर्जन, डेढ़ दर्जन व्यक्ति ही होंगे तब यह बड़ा हास्यास्पद सा लगेगा कि जलूस सा बना कर चला जाए।

तेल डालने का भी यही आशय है जो मैंने सेहरे के विषय में ऊपर लिखा है, सो वह भी नहीं होना चाहिए।

मुझे सब से अधिक घृणा दिखावे से है। एक नव-विवाहित जोड़ा रंग-बिरंगे वस्त्र धारण करके, हाथ-पांव रंग कर, सोने-चांदी के आभूषण लाद कर एक जलूस बनाकर जाएं और साथ ही बाजे भी बजते जायं, यह दृश्य मुझे बहुत ही बुरा लगता है। इसी कारण मैं चाहता हूं कि हम प्रतिदिन पहनने वाले कपड़े ही पहनें। न कोई हार हो, न जलूस निकले, और न बाजे इत्यादि हों। मुझे अपनी इच्छा के अनुसार होने वाले विवाह से बड़ा हर्ष होगा। अनावश्यक प्राचीन रूढ़ियों से मेरा दिल बड़ा खट्टा होता है। यदि मेरा विवाह स्कूल में पढ़ने के दिनों में कर दिया जाता तो

मुझे विवश करके बलपूर्वक जैसा चाहते वैसा कर लेते, परन्तु अब यह नहीं हो सकता। मैं किसी के हृदय को पीड़ित अथवा निराश नहीं करना चाहता, परन्तु मैं हठ इसलिये कर रहा हूं कि मैं अब इन रीतियों को भली प्रकार समझता हूं। दूसरी ओर वे लोग हैं जो इन रीतियों का पालन केवल इसलिये करते हैं कि उनके पूर्वज ऐसा करते आए हैं। अब समझौता हो तो कैसे हो? मुझे अपने घर में भी इस विषय में बड़ी कठिनाई हुई। मेरी माता जी मेरे विवाह में बहुत कुछ करना चाहती थीं, क्योंकि उनके लिये यह 'पहले पुत्र' का विवाह था। परन्तु मैंने उन्हें साफ-साफ कह दिया कि यदि मैं विवाह करूँगा तो बिल्कुल अपने तरीके से करूँगा, अन्यथा नहीं करूँगा। उन्होंने थोड़ा रुष्ट होकर अन्त में मेरी बात मान ली है। मुझे इस घटना से बहुत उत्साह मिला है कि अभी कुछ दिन पहले एडवर्ड अष्टम् ने अपने आदर्श के लिये राज्य तक को छोड़ दिया। क्या मैं अपने आदर्शों और विचारों पर दृढ़ नहीं रह सकता?

बहनोई की ओर से साले को पत्र

(लड़की के फूफा की ओर से लड़की के पिता को)

'ज' अपनी कठोर शर्तों को कभी नहीं छोड़ेगा और न ही वह उन शर्तों का उल्लंघन सहनकर सकता है। 'भ' को "हिज मास्टर्स वॉइस" बन कर रहना पड़ेगा। यदि आपके विचार में 'भ' के भी ऐसे ही विचार हों, और वह इनके अनुसार चलने में दासता का अनुभव न करे, तो मैं सबसे पहला व्यक्ति हूँगा जो 'हां' करूंगा।

इसलिए मेरे विचार में सारे पत्र 'भ' को पढ़ा देने चाहियें और उसकी भी सम्मति ले लेनी चाहिए। आप परस्पर विचार करके और अपने पिता जी की राय लेकर मुझे उत्तर दें। मेरी नाराज़गी का अथवा किसी अन्य बात का आप तनिक भी विचार न करें। मैं अपने ऊपर किसी भी प्रकार की ज़िम्मेदारी लेने के लिये तय्यार नहीं। आजकल का समय बड़ा नाज़ुक है, इसलिये सोच-विचार कर कार्य करना चाहिए। सबसे पहले 'भ' के सुख का विचार करना चाहिए, क्योंकि सम्भवतः 'ज' केवल दो-तीन दिन पहले सूचित करेगा।

भाई की ओर से लड़के को पत्र

मुझे बड़ा खेद है कि मैं आपके पत्र का इतनी देर से उत्तर दे रहा हूँ। कारण केवल यही था कि मैं आपका पत्र पढ़कर आज तक आश्चर्य में ही डूबा हुआ था कि इसका क्या उत्तर दूं। एक ओर तो आप विचारों की स्वतन्त्रता का ढिंढोरा पीटते हैं और दूसरी ओर अपने विचारों को सर्वोत्तम समझ कर दूसरे के विचारों को बिना किसी युक्ति के रद्द कर देना चाहते हैं। जो बातें नितान्त निजी हैं, जिनको करने अथवा न करने का पूरा २ अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है, उन बातों को आप अपनी इच्छा पूरी करने के लिये बलपूर्वक दूसरों से मनवाना और कराना चाहते हैं।

१. संसार की प्रत्येक वस्तु में गुण भी होते हैं और अवगुण भी। देखना केवल यह होता है कि कोई वस्तु किस समय गुणकारी

है और किस समय हानिकारक। जिस प्रकार यदि खाने की वस्तु को ढक कर रखा जाय तो मनुष्य उन रोगों से बच जाता है जो मक्खियों के बैठने से उत्पन्न होते हैं, परन्तु उन्हीं चीजों को नंगा रखने से हानि होती है। अफ़ीम का यदि औषधि के रूप में सेवन किया जाय तो यह बहुत गुणकारी होता है और यदि नशे के रूप में इसका प्रयोग किया जाय तो इससे बुरी कोई वस्तु नहीं। इसी प्रकार दो या चार मिनट के लिये घूंघट निकालने से यदि लड़की आसानी से अपने आप को लोगों की दृष्टि से बचा सके तो मेरे विचार में वह पर्दा भी अच्छा है। यह बिलकुल निजी प्रश्न है, इसमें मुझे अथवा आपको हस्ताक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं। आपके माता-पिता या सम्बन्धियों से पर्दा करना या कराना आप दोनों की इच्छा पर निर्भर है।

२. मैंने इससे पूर्व भी आपको लिख दिया था कि बारात कितनी होनी चाहिये या कितनी आपने लानी है। इस बात से डाक्टर साहब का कोई सम्बन्ध नहीं, यह सब कुछ केवल आप पर निर्भर है। परन्तु डाक्टर साहब के घर कितने व्यक्ति आने चाहियें यह विषय, क्षमा कीजिये, आपके निर्णय करने का नहीं है। वे स्वयं इसका निर्णय कर सकते हैं। कई सम्बन्धी ऐसे होते हैं, जिनको बुलाए बिना काम नहीं चलता। जैसे आपने अपने माता-पिता और बहनों को साथ लाने के लिए लिखा है, उसी प्रकार डाक्टर साहब की भी शोभा माता-पिता, बहनों, चाचा और लड़की के मामा आदि को बुलाए बिना नहीं होगी। मैंने

आपको लाहौर में भी कहा था कि ये सारे व्यक्ति मिलकर दस-बारह से अधिक नहीं होंगे, इसलिए आपको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इन सभी सम्बन्धियों को बुलाने के लिए कुछ समय पहले सूचित करना आवश्यक है, इसलिये मैंने आपको कम से कम एक महीना पहले तिथि निश्चित करने के लिए लिखा था। मेरा अनुमान है कि चाचाजी को और मुझे भी कम से कम दस दिन पहले छुट्टी के लिए लिखना पड़ेगा और जब यह निर्णय हो चुका है कि फ़ालतू सम्बन्धियों को नहीं बुलाया जायगा, तब पहले ही तिथि निश्चित न करने का मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता। मेरी भतीजी का विवाह भी बैसाख का निश्चित हुआ है; डाक्टर साहब के साले के लड़के का विवाह भी आज से दो-तीन महीने बाद होना निश्चित हुआ है। यदि आपके विवाह का भी दिन तय हो जावे तो छुट्टी आदि का प्रबन्ध उसी के अनुसार किया जा सकता है। सरकारी नौकरों के लिए बार-बार छुट्टी लेना बहुत कठिन होता है। आप तो बड़े नियम के पक्के व्यक्ति हैं, परन्तु मेरे जैसे उजड्ड आदमी को, जिसकी पढ़ाई नाम मात्र की है, और जिसने जीवन में कोई भी नियम न बनाकर संसार की लहरों के थपेड़े ही खाए हैं, हर एक व्यक्ति को प्रसन्न रखना पड़ता है। यदि आपके विचार से चाचाजी का साथ आना अथवा मेरा डाक्टर साहब के पास जाना उचित न हो, तब तो मेरे विचार में बहुत पहले तिथि निश्चित करने की कोई आवश्यकता नहीं। फिर तो मैं आपको उन रीतियों का पालन करने का भी परामर्श नहीं

दूंगा, जो आपने स्वीकार करली हैं, वरन् सिविल-मैरिज करने के लिए कहूँगा। इस बात के लिए, हो सकता है कि, मैं डाक्टर साहब को भी सहमत कर लूं।

व्यर्थ रीतियां, जैसे महंदी, चूड़ा व तेल डालना आदि जो आपने लिखी हैं, नहीं की जायंगी और यदि मुझे उस समय उपस्थित होने का अवसर मिला, तो इस बात का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जायगा कि सारा कार्यक्रम आपकी इच्छानुसार हो।

लड़के की ओर से भाई को पत्र

यह मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि आप विवाह के समय वहां अवश्य हों। चूंकि इस सारे कार्य के अन्दर आपका बहुत अधिक हाथ है, इसलिए आपको अपने परिश्रम की सफलता अपनी आँखों से देखनी चाहिए। परन्तु मैं समझ नहीं पा रहा कि कैसे क्या किया जाए। मैंने अभी तक निश्चय नहीं किया कि विवाह कब करूंगा और कुछ कारणों से मैं बहुत समय पहले निश्चय करूंगा भी नहीं। पिताजी को स्टेशन से बाहर रहने के लिए केवल रविवार के लिये आज्ञा लेनी पर्याप्त है, जो बहुत शीघ्र मिल सकती है। साथ ही मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि मेरा मन इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं है कि मैं महीना पहले विवाह की तारीख नियत कर दूं। यद्यपि मेरी तबियत ऐसी है कि अन्य कई मामलों में मैं अपने प्रोग्राम कई-कई सप्ताहों एवं महीनों पहले तय कर लेता हूँ, परन्तु विवाह मैंने कभी कराया नहीं है, इसलिये इस मार्ग में पहली बार पांव रखते समय झिझक हो रही है और

सोचता हूँ कि पांव सम्भाल-सम्भाल कर रखना चाहिये। मैं अपनी शादी चोरी छुप्पे करना चाहता हूँ ताकि किसी को पता ही न लगे। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप किसी कार्यवश, सयोग से, डाक्टर साहब के यहां आये हुए हों और मैं भी माता-पिता के साथ पहुँच जाऊं और चुपचाप विवाह कराके लौट आऊं। गली-मुहल्ले में भी इस बात का पता न चले। मुझे पता नहीं कि मेरा दिल इस तरह का विवाह करने के लिये क्यों लालायित है, परन्तु मेरी हार्दिक अभिलाषा यही है। यह परमात्मा ही जानता है कि मेरी यह अभिलाषा पूरी होगी या नहीं। मैं अपना विवाह कचहरी में नहीं कराना चाहता।

पर्दे के सम्बन्ध में मुझे यह चिन्ता है कि यदि लड़की अपनी मर्जी से विवाह के समय पर्दा करना चाहती है तो हो सकता है कि वह बाद में भी कुछ सम्बन्धियों से पर्दा करना चाहे। तब पर्दा न करने के लिये मैं उसे किस तरह विवश कर सकूंगा? मैं तो यह चाहता हूँ कि उसके विचार ऐसे हों कि वह स्वयं पर्दा करना बरदाश्त न करे। मेरी बहनों के भी इसी प्रकार के विचार हैं। मैं नहीं चाहता कि विवाह के बाद मुझे पर्दा हटवाने में परेशानी उठानी पड़े। इसलिये मैं पहले ही यह प्रथा दूर कर देना चाहता हूँ। मुझे एक और भी डर है कि शायद 'भ' स्वयं पर्दा करना न चाहती हो, वरन् मां-बाप एवं अन्य सम्बन्धियों से डरती हुई पर्दा करने के लिये विवश हो रही हो। इस सम्बन्ध में आपको ही पता होगा। परन्तु यदि यह बात है तो विवाह के बाद भी यह विवशता बनी

रहेगी, क्योंकि पर्दे की प्रथा को छोड़ना आसान नहीं है; यह बड़े साहस का काम है—कई बातें सुननी और सहनी पड़ती हैं।

एक बात मेरी समझ में नहीं आती—'भ' ने विवाह के समय पर्दा करना किससे है ? उस समय सिवाय मायके और ससुराल वालों के अन्य किसी व्यक्ति ने उपस्थित नहीं होना। यदि 'भ' उस समय ससुराल वालों से तथा सम्बन्धियों से पर्दा करना चाहती है तो फिर तो बस पूरा पड़ लिया ! और यदि वह मुझ से पर्दा करना चाहती है तो मुझे आज्ञा दे दो, मैं अपनी आंखें बन्द कर लूंगा। भाई साहब ! क्या आप 'भ' के साथ इस मामले में स्वयं बात-चीत नहीं कर सकते (जब भी अवसर मिले) ? शायद वह संकोचवश माता-पिता के साथ दिल खोल कर बात न कर सकती हो, और आपको पूरी तरह अपने दिल की बात बता दे।

भाभी को लड़के का पत्र

'भ' के कपड़ों के सम्बन्ध में मैंने सोचा है और सलाह ली है। मेरे विचार से 'भ' को पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि जिस तरह के कपड़े वह पसन्द करे वही पहन ले। शोख रंगों के कपड़े कोई समझदार लड़की पहनना पसन्द नहीं करती। न ही मैं यह समझता हूँ कि सलमे-सितारे के एवं जड़ाऊ कपड़े ही सुन्दर लगते हैं। आप 'भ' को अपनी पसन्द के कपड़े ही लेने दें। अपनी या किसी दूसरे की रुचि, पसन्द एवं इच्छा पर आप इस मामले का निर्णय न करें। जिसे कपड़े पहनने हैं उसे ही पसन्द करने चाहिएं।

मैंने पहले भी अपने पत्रों में विनती की थी कि विवाह के निकट आकर दबादब कपड़े खरीदने या सिलवाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। किस लड़की के पास पहले कपड़े नहीं होते? और यदि पहले के कपड़े अच्छे न हों तो यह बात लड़कियों के साथ अन्याय एवं अनुचित व्यवहार की निशानी है।

मैं खद्दर-पोश नहीं हूँ, परन्तु मुझे यह बात भी बड़ी विलक्षण लगती है कि विवाह के समय रेशमी कपड़ों, चादरों, गिलाफों आदि पर बहुत-सा रुपया खर्च कर दिया जाए। नव-विवाहिता लड़की को तो रेशमी कपड़े पहने बिना खाना ही नहीं पचता। बिना रेशमी कपड़े पहने मानो मां बाप और ससुराल का अपमान होता हो। सुथरे, सोफ़ियाने रेशमी कपड़े भले ही पहन लिये जाएँ, पर यह ख्याल नहीं होना चाहिये कि बहू-बेटी को अवश्य रेशमी कपड़े पहना कर पीढ़े पर बैठा दिया जाए—जैसे नुमायश लगाई हुई हो।

लड़के का भाई को पत्र

मैंने इस बात की इजाज़त तो बिल्कुल नहीं दी थी कि वे लोग अपने सारे निकट सम्बंधियों को बुला लें। मेरी यह अन्तिम विनती है कि वे इस प्रकार से सम्बंधियों को एकत्रित न करें। हम भी यहां किसी को नहीं बुला रहे हैं। यहाँ तक कि यहीं रहने वाले सम्बंधियों को भी हम बरात में शामिल नहीं कर रहे हैं। अच्छा यही लगता है कि दोनों ओर से एक जैसा ही कार्य किया जावे।

विवाह की तारीख़ निश्चित की गई है, डाक्टर साहब को चिट्ठी लिख दी गई है। आशा है यह दिन उनको हर तरह से ठीक रहेगा। प्रोग्राम यह है कि शनिवार को हम लोग छः बजे की गाड़ी से पहुँचेंगे। हम लोग संख्या में पाँच-छः से अधिक नहीं होंगे। शाम का खाना हम वहाँ खाएंगे। अगले दिन सवेरे विवाह-संस्कार हो जाएगा, जो ८ बजे तक सम्पूर्ण हो जाना चाहिये। फिर थोड़ा-बहुत खा-पी कर हम लोग पौने दस बजे की डाक-गाड़ी से वहाँ से चल पड़ेंगे।

आपने मेरे लिये अब तक बहुत कुछ किया है, जिस के लिये मैं आपका बहुत अनुगृहीत । परन्तु अभी मैं आपकी कुछ और कृपाओं का आकाँक्षी हूं। आप ने अपने पत्र में वचन दिया था कि यदि आप विवाह के समय मौजूद हुए तो इस बात का ध्यान रक्खेंगे कि सारा काम मेरी इच्छा के अनुसार हो। यदि किसी बात में सन्देह हो तो आप मुझ से पूछ सकते हैं। मैं आनन्द-मंगल के अवसर को रूखा नहीं बनाना चाहता। आप देखेंगे कि यदि सब काम निर्विघ्न होता गया तो मैं स्वयं उस अवसर की खुशी को बढ़ाऊंगा।

स्टेशन से हमें ले जाने के लिये आप आएंगे ही। अन्य कोई व्यक्ति इस काम के लिये स्टेशन पर न आवे। बस एक टांगे में बैठ कर हम लोग घर चले जाएंगे। घर पहुँचते ही आप हम सब को सीधे घर में ले जाएं। बाहर गली या बाज़ार में बिल्कुल नहीं खड़े होना। न ही वहाँ कोई प्रथा पूरी करनी। न गली-मुहल्ले में

हमारी प्रतीक्षा करने वालों की भीड़ लगी हुई हो। आप हमें अन्दर बैठक में ले जाएं जहाँ घर के सब लोग बैठे हों। जो दूसरे पक्ष के किसी व्यक्ति को न जानता हो उसका उससे परिचय करा दें। इस तरह हम लोग आध-पौन घंटे मिल कर बैठेंगे। हम में से जिसे प्यास होगी वह शिकंजबी या पानी पी लेगा। उस समय और कुछ न खिलाया-पिलाया जावे। उसके बाद पाठ-पूजा, संध्या आदि करके खाना खाएंगे और उसके बाद शीघ्र सोने का प्रयत्न किया जाएगा—क्योंकि अगले दिन सवेरे जल्दी उठना है।

रात के भोजन के समय आपने यह देखना है कि सब बड़े-छोटे इकट्ठे बैठ कर खाना खाएं। यदि स्त्रियां भी सब के साथ बैठ कर खाना खा सकें तो और भी अच्छा हो। नहीं तो वे अलग—दोनों ओर की स्त्रियां मिल-बैठ कर—खाना खाएं। भोजन खिलाने का कार्य केवल दो-तीन व्यक्तियों को सौंपा जा सकता है। परन्तु डाक्टर साहब तथा डाक्टरनी जी अवश्य हमारे साथ बैठकर भोजन करें। आपका तथा भाभी जी का भी हमारे साथ बैठना आवश्यक है। मैं नहीं चाहता कि खाने-पीने के समय चुप-चाप बैठकर जल्दी-जल्दी पेट भर कर उठने की जल्दी की जावे। भोजन के समय बातचीत होनी चाहिये तथा एक-दूसरे के साथ जान-पहचान होनी और बढ़नी चाहिये। इसलिये आपका और भाभी जी का हमारे साथ बैठना जरूरी है।

वहां ठहरने के प्रबंध के सम्बन्ध में यह निवेदन है कि टट्टियों और स्नान-घर का प्रबंध सन्तोषजनक होना चाहिये ताकि

सवेरे तैयार होने में देर न लगे और सब लोग तैयार होकर छः बजे तक विवाह-संस्कार पर आ बैठें।

'भ' को घूंघट बिल्कुल नहीं निकालना। विवाह-संस्कार के बाद 'भ' बाबूजी को नमस्कार करेगी तथा हम दोनों भी एक-दूसरे को नमस्ते कह देंगे।

विदा के लिये मेरी तो यह इच्छा है कि घर पर ही 'भ' को विदा कर दिया जाए और स्टेशन तक हमें छोड़ने केवल एक-दो व्यक्ति ही आवें। 'भ' को डोली में न बिठाया जाए। न ही कोई बैंड-बाजा आदि बजे। मैं बड़ा प्रसन्न हूँगा यदि विदा प्रसन्न चित्त से की जाए। रोने-धोने का प्रोग्राम बिल्कुल न किया जाए।

खाने-पीने के सम्बन्ध में यह विनती है कि बहुत से पदार्थ बनाने की कोई आवश्यकता नहीं। वहां हमें खाना शाम को, अर्थात् केवल एक ही बार, खाना है। अगले दिन सवेरे विवाह के बाद थोड़ा-बहुत प्रातराश करके हम लोग चल ही पड़ेंगे।

विवाह

इतने झगड़ों-झमेलों के बाद विवाह आखिर इस तरह हुआ:—

बरात कोई नहीं ले जाई गई। केवल वर, उसके पिता, छोटा भाई तथा छोटी बहन विवाह में सम्मिलित होने के लिये गए। वर के यहां सगे-सम्बंधियों को बिल्कुल इकट्ठा नहीं किया गया। लड़की वालों ने अनेक प्रार्थनाओं के बावजूद कुछ सम्बंधियों को इकट्ठा कर लिया। (लड़की का मामा, मामी, फूफी, फूफा, तथा बहनोई बाहर से आए)। वर-पक्ष के लोग शाम को ६ बजे वहां पहुँचे

और अगले दिन ६ बजे वहां से चल पड़े। ढुकाव, मिलनी आदि की रस्म नहीं की गई। स्टेशन पर केवल एक व्यक्ति लड़के वालों को लेने गया और वे सीधे लड़की वाले के घर आगए। लड़के ने न तो बहुरूपियों जैसा स्वांग भरा और न वह सेहरा बांधकर और घोड़े पर चढ़कर लड़की वाले के घर गया। रात को सब ने इकट्ठे बैठकर खाना खाया। सवेरे विवाह-संस्कार अत्यन्त साधारण रीति से हुआ। लड़की ने साधारण रोज़ वाले कपड़े पहने हुए थे। उसने पर्दा बिल्कुल नहीं किया। लड़की और लड़के को खुशी के हार पहनाए गए। लड़की ने फिर हाथ जोड़कर लड़के को तथा उसके पिता को नमस्कार किया। दो घन्टे बाद लड़की विदा कर दी गई। बिना किसी के रोये-धोये लड़की को अकेली लड़के के साथ भेज दिया गया। तीन-चार व्यक्ति स्टेशन तक लड़के तथा उसके साथ वालों को छोड़ने आए। विवाह में कोई बैंड-बाजा नहीं बजाया गया। न डोली की रस्म हुई, न 'सगन' दिए गए। लड़की ने न आभूषण पहने, न चूड़ा, और न ही उसने महंदी लगाई।

लड़की अपने साथ एक छोटा-सा सूट-केस, एक छोटी सी अटैची तथा एक बिस्तर लाई। सूट-केस में पाँच-चार सादा साड़ियां थीं – जैसी रोज़ पहनी जाती हैं। उनमें कुछ पहले की पहनी हुई और धोई हुई थीं। अटैची-केस में रोज़ का नहाने-धोने एवं कंघी-चोटी का सामान था। बिस्तरे में साधारण दरी, खेस, रज़ाई, गद्दा, तकिया और दो चादरें थीं। (न चादरें रेशमी थीं और न रज़ाई पलश या साटन की थी)। लड़की के पिता ने

विवाह से पहले १०००) बैंक में जमा कराके पास-बुक उसे दे दी थी। लड़की की ससुराल वालों ने उसके वहां पहुँचने से तीन-चार दिन बाद उसकी इच्छा के अनुसार पांच-चार साड़ियां दिला दीं तथा अन्य कपड़ों के लिये १००) और दे दिये। लड़के ने अपनी ससुराल वालों से कुछ भी न लिया। न ही विवाह के उपलक्ष में अपने घर से कोई नये कपड़े सिलवाए। विवाह के समय कोई 'दान' आदि नहीं लिया-दिया गया।

विवाह के बाद लड़की पांच-छः दिन ससुराल में रहकर पति के साथ अपने माता-पिता से मिलने मायके गई और वहां एक दिन ठहर कर दोनों वापस आ गए। उसके बाद दम्पति 'हनीमून' मनाने कश्मीर चला गया। वहां से सवा महीने बाद वापस आया। वापस आकर तीन-तीन चार-चार दिन ससुराल और मायके दोनों घरों में रह कर फिर पति-पत्नी अपने स्थायी ठिकाने पर आकर रहने लगे।

विवाह से बाद की बातें

विवाह इस प्रकार हुआ था, परन्तु दुनिया क्या कहती और करती थी वह सुनिये :—

१. लड़की की ननसाल से एक ब्राह्मणी आई और उसने कई

जगह कहा, "सात सूट लड़के को मिले हैं और ७ साड़ियां लड़क को। १०००) नक़द दिया गया है। लड़की वालों ने लड़के से ड कर विवाह से एक दिन पहले सब मिलने-जुलने वालों और सगे-सम्बन्धियों को दावत दे दी थी।"

२. लड़की वालों के सम्बन्धियों ने कहा कि "लड़के ने रुपया मांग कर लिया है। स्वयं लड़के ने अपने मुँह से अपने ससुर से रुपया मांगा था। उनके पास इतना रुपया नक़द नहीं था। तो चार सौ रुपया हमने दिये, चार सौ लड़की के मामा ने, तथा दो सौ रुपये डाक्टर साहब ने अपने पास से डालकर १०००) पूरे किये।"

३. किसी और ने कहा कि "लड़की वालों ने लड़की के कपड़ों और रुपये को दहेज की भांति बिरादरी में दिखाया।"

४. "लड़के का एक सम्बन्धी शहर छोड़कर दो सौ मील दूर चला गया क्योंकि उसे इस बात पर शर्म आई कि लोग कहेंगे कि उसे बरात में शामिल होने के लिये भी नहीं कहा गया।"

५. लड़के वाले के घर में जिनका विवाह-शादी में आना-जाना और लेना-देना था, उन्होंने कहा, "बेचारे भूखे हो गए हैं। पास कुछ है ही नहीं। पहले पुत्र का विवाह किया और सारी बिरादरी और भाईचारे को तिलांजलि दे दी। कई लेने वाली बहन-बेटियां घर पर आ बैठीं कि "लेना हमारा अधिकार है।"

६. बज़ाज़ों, हलवाइयों, दर्ज़ियों आदि ने कहा, "हमने सोचा था 'ज' का विवाह होने वाला है, हमारी अच्छी कमाई होगी;

तन्तु इन लोगों ने चोरी-चोरी ही विवाह कर लिया।"

७. लड़की के मायके में, जब वह विवाह के बाद गली में निकली तो स्त्रियों ने एक-दूसरी से कहा, "देखो जी इस लड़की का विवाह हो गया है। विवाह के समय भी इसने सफेद कपड़े पहने हुए थे। इस से तो कंवारी लड़कियाँ ही अधिक शौक़ीन होती हैं।"

८. गली वाली एक अन्य महिला ने कहा, "लड़की के बाप ने तो ग़ज़ब कर दिया। धोये हुए कपड़े लड़की के सूट-केस में र कर पकड़ा दिये।

९. लड़के के मां-बाप ने उसकी जान पर बना दी—"तूने शहर में हमारी तो ऐसी मिट्टी ख़राब की है कि हमें कहीं खड़े होने योग्य भी नहीं छोड़ा।" उन्होंने लड़के से मुँह फुला लिया और धमकी देने लगे कि "तेरे साथ मेल-जोल, आना-जाना और बोलना-चालना सब बन्द हो जाएगा। यदि कोई सज्जन, मित्र ऐसे सीधे-सादे विवाह की प्रशंसा करते भी थे तो मां-बाप समझते थे कि उनके साथ व्यंग किया जा रहा है।

लड़की नरम दिल की होने के कारण इन व्यंगों से दुःखी होती रहती थी। वह अपने पिता को पत्र लिखती है, "वही लोग जिन्हें आप अपने समझते हैं और जिनके लिये आप बड़ा स्नेह रखते हैं, हमारी बदनामी कर रहे हैं।.....ख़ैर, मैं जानती हूँ कि सुधार करने वालों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, बड़ी बदनामी झेलनी पड़ती है; सो हम झेल रहे हैं और आगे भी झेलने के लिए तैयार हैं। हमने अपने सिद्धान्तों पर

दृढ़ रहना है, लोग चाहे कुछ भी कहें और कुछ भी झूठी-सच्ची बुराइयां करें।"

लड़के का पत्र भाई को

मैं अपना यह परम कर्तव्य समझता हूँ कि आपकी सारी कृपाओं के लिये आपका हृदय से धन्यवाद करूं। आपने मेरे लिये बहुत कुछ किया है; आपका ऐहसान मैं कभी नहीं भूल सकता। विवाह के अवसर पर सब काम मेरी इच्छा के अनुसार हो सका, यह सब आपकी ही कृपा थी। इस सारे कार्य की पूर्ण सफलता के लिये मैं आप दोनों का तथा डाक्टर साहब का अनुगृहीत हूँ।

अब मेरी परीक्षा का समय आया है कि मैं अपने आदर्शों के अनुसार योग्य पति बन कर दिखाऊं। इस सम्बन्ध में आपको कई चिन्ताएं होंगी; केवल समय बतलाएगा कि ये चिन्ताएँ ठीक हैं या व्यर्थ।

हां, एक बात का मैं आपको अभी विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि हम दोनों को किसी प्रकार का पछतावा या अफ़सोस नहीं है।

लड़की का पत्र अपनी बूआ तथा फूफा के नाम

आपकी बधाई पहुँची, जिसके लिये मैं आपका सच्चे हृदय से धन्यवाद करती हूँ। आदरणीया बूआ जी की चिट्ठी से पता लगता है कि वे मेरे बारे में बहुत अधिक चिन्ता करती हैं। सो कृपा करके उन्हें विश्वास दिला दें कि मैं हर तरह से सकुशल हूँ और

मुझे पूरा विश्वास है कि मैं अपना सारा जीवन सुखी व्यतीत करने में सफल हो जाऊंगी। मुझे इस बात की भी बड़ी प्रसन्नता है कि मैं सुधारकों के साथ मिलकर वैसे भी मानव-जीवन को सफल कर सकूंगी।

लड़के को भाई का पत्र

आपके पत्र पढ़कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है कि आप दोनों एक-दूसरे से पूरी तरह सन्तुष्ट हैं। यह चीज़ वैवाहिक जीवन में अत्यन्त दुर्लभ है। मुझे पूरा विश्वास है कि 'भ' बड़ी सुशील और आज्ञाकारिणी है। वह कभी आपस में भेद-भाव उत्पन्न नहीं होने देगी। मुझे पहले जितनी चिन्ता थी, तुम्हारा पत्र पढ़कर उसकी अपेक्षा कई हज़ार गुना हर्ष हुआ है।

नई समस्याएं

विवाह के बाद सब से कठिन समस्या यह उपस्थित हुई कि "सम्बन्धियों और सगों की भेंटें और 'भाजियां' आदि किस तरह बन्द की जाएं।" ना करने से सगे-सम्बन्धी गुस्से हो जाएंगे। विवाह से लौटते ही गली-मुहल्ले, कुटुम्ब और सम्बन्ध की स्त्रियां 'मुँह-दिखाई' के लिये आ पहुँचीं और रुपये देने के लिये हठ करने लगीं। जब लड़की मायके गई तो उसकी माँ ने उसे रुपये और कपड़े आदि देने चाहे, जो लड़की ने हृदय पर पत्थर रखकर माँ को नाराज़ करके वापस कर दिये। एक बार लड़की का पिता लड़की की ससुराल में आया और उसने लड़की के हाथ पर कुछ रुपये रखने चाहे। बड़ी कठिनाई से वे रुपये वापस किये गए।

लड़की की बूआ, फूफा, मामा आदि ने उसे कुछ देने के लिये बहुत जोर लगाया।

किसी से कुछ न लेने में सबसे बड़ी कठिनाई यह पेश आती है कि सम्बन्धी क्रुद्ध हो जाते हैं, उन्हें समझाना कठिन हो जाता है, और वे यह समझते हैं कि ये लोग भविष्य में देने से बचने के लिये इस समय हमसे कुछ नहीं लेना चाहते। अगले पत्र में लड़की ने अपना मन्तव्य प्रकट करने की कोशिश की है।

लड़की का अपने फूफा साहब को पत्र

कल मैंने आपकी सारी बातें बड़े ध्यान से और प्रेम-पूर्वक सुनीं। मैंने उन बातों पर घर लौट कर सारी रात और आज सारा दिन बड़ी शान्ति के साथ विचार किया। पूज्य फूफा जी! क्या उस घर में पति-पत्नी का जीवन सुखी हो सकता है जहाँ दोनों के विचार एक-दूसरे से भिन्न हों। यदि मैं अपना जीवन दुखी बना लूंगी तो संसार में थोड़े ही दिन व्यतीत कर सकूंगी। मैं तो अपने जीवन को अधिक से अधिक सुखी बनाने का प्रयत्न करती हूँ और करती रहूँगी।

हमारे सारे रिश्तेदारों के मन में यह विश्वास बैठ गया है कि मैं जो भी काम करती हूँ 'ज' जी के कहने से ही करती हूँ और मैं अन्धी होकर उनका अनुसरण करती हूँ। परन्तु विश्वास कीजिये कि यह बात सोलह आने असत्य है। उनकी ओर से मुझे पूरी स्वतंत्रता है। मैं हर काम अपनी इच्छा के अनुसार कर सकती हूँ। यह बात दूसरी है कि हम दोनों सदा एक-दूसरे की सलाह

ले लेते हैं। हम चाहे एक-दूसरे की स्वतन्त्रता में हस्ताक्षेप करना नहीं चाहते, परन्तु यह बात स्पष्ट प्रकट है कि यदि हम दोनों एक-दूसरे के विरुद्ध काम करने लग जाएं तो हम कभी भी अपना दाम्पत्य जीवन प्रसन्नता-पूर्वक नहीं बिता सकते।

दो-तीन वर्ष पहले मेरे विचार ऐसे नहीं थे, पर ज्यों-ज्यों मैं 'ज' जी के विचारों से परिचित होती गई, मेरे भी वैसे ही विचार बनते चले गए। चाहे वे विचार अच्छे हैं या बुरे, परन्तु मुझे ये सारे अच्छे ही लगते हैं, क्योंकि अब मैं पूरी तरह इन विचारों से सहमत हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि हम कौनसा बुरा काम कर रहे हैं। हमारा दिल साफ़ है। यदि कोई हमारे विचारों को समझने का प्रयास नहीं करता तो उसकी इच्छा। आज नहीं समझते तो कुछ वर्ष बाद सही। हमने अपने ये नियम इसलिये नहीं बनाये हैं कि हम रिश्तेदारों से दूर हो जाएं; बल्कि ये नियम उनके अधिक निकट पहुँचने के लिये धारण किये हैं। हमारे नियमों और सिद्धान्तों का वास्तविक अर्थ ही यह है कि सम्बन्धियों का मिलना दुखदायक न रहे, बल्कि सब आपस में हँसी-खुशी मिलें-जुलें। लेन-देन की प्रथा के कारण कई रिश्तेदार घर के सामने से बिना मिले निकल जाते हैं। बहन-बेटी के यहाँ लोग इसलिये जाने से कतराते हैं कि कुछ देना पड़ेगा। यदि मैं पिता जी से एक बार कुछ ले लूँ तो सदा मिलने के लिये जाते समय यह ख्याल दिल में आएगा कि जब मैं जाऊँगी तो पिता जी मुझे कुछ न कुछ देने के लिये बाध्य हो जाएंगे। इसलिए कई बार मन

करते हुए भी मैं वहाँ जाने से कतराऊँगी। परन्तु अब मेरा जब भी मन करेगा मैं निःसंकोच मिलने के लिए जा सकती हूँ। न उन्हें ही मेरे जाने से चिन्ता होगी कि लड़की को कुछ बनाकर देना है।

पूज्य फूफा जी! आप विश्वास कीजिये कि मुझे जितनी खुशी न लेने से होती है उतनी लेने से शायद कभी न होगी। मैं मानती हूँ कि जो रिश्तेदार मुझे केवल प्यार के कारण कुछ देना चाहते हैं उन्हें बड़ी निराशा होती है। परन्तु सब लोग प्यार से नहीं देते, वरन् रस्मी तौर से या 'लेन-देन' के रूप में देते हैं। यह कितना अच्छा हो कि जो सगे-सम्बन्धी हम से सच्ची सहानुभूति रखते हैं वे ज़बरदस्ती करने की कोशिश न करें, बल्कि, यदि हो सके तो, हमें अपने सिद्धान्तों और आदर्शों में सफलता प्राप्त करने में सहायता दें। हां, आवश्यकता पड़ने पर हम उन लोगों से, जिनके हृदय में हमारे लिये प्यार है, चीज़ एवं रुपया आदि मांग कर ले सकते हैं।